आनन्दाऽमृत वर्षिणी

آنند امرت برکھنی

श्री मत् परमहंस परिव्राज स्वामी

आनन्द गिरि महाराज रचित

जिस में

पञ्चदशी वेदान्तसार, तत्त्वानुसन्धान, श्री मद्भगवद्गीता, आत्मबोध यन्त्र मांडूक्य, वृहदारण्य, छन्दोग्य निषद, और पञ्ची करण वार्त्ति-कादि श्री शङ्कर भगवान भाष्यकार से आदि ले अनेक आचार्य्यों के रचित ग्रन्थों का सारांश विशेष श्रुति वेदवाक्य और हरिभक्तों के ज्ञानभक्ति वैराग्य के दृढ़ार्थ श्री कृष्णचन्द्र परब्रह्म की महिमा और मुक्ति का उपाय दृष्टान्त पूर्वक बालकों के सुखबोध और पाठ निमित्त अति सुगम और ललित वार्त्तिक में वर्णित है ॥

तीसरी बार

लखनऊ

मुन्शी नवलकिशोर के छापेखाने में मुद्रित हुई॥

फ़रवरी सन् १८८१ ई०

विज्ञप्ति

इस महीने अर्थात् फरवरी सन् १८८१ ई० पर्य्यन्त जो पुस्तकें बेचने के लिये तय्यार हैं वह इस फ़ेहरिस्त में लिखी हैं और उनका मोल भी बहुत किफ़ायत से घटाकर लिखा है परंतु व्योपारियों के लिये और भी सस्ती होंगी जिनको व्यापार की इच्छा हो वह छापेख़ाने के मुहतमिम अथवा मालिक के नाम ख़त भेजकर क़ीमत का निर्णय कर लें ॥

नाम किताब	नाम किताब	नाम किताब	नाम किताब
संस्कृत की पुस्तकें	जातकालङ्कार स॰	१ पहिले हिस्सा में	२ सभा पर्व्व
लघु कौमुदी	जातका भरण	आदि पर्व्व, सभा पर्व्व,	३ वन पर्व्व
सिद्धान्त चन्द्रिका	होरा मकरन्द	वन पर्व्व,	४ विराट पर्व्व
अमरकोष तीनोंकांड	संस्कृत उर्दू टी॰ स॰	२ दूसरे हिस्सा में विरा-	५ उद्योग पर्व्व
पञ्च महायज्ञ	मनुस्मृति	ट पर्व्व, उद्योग पर्व्व,	६ भीष्म पर्व्व
निर्णय सिन्धु	विष्णु हारीत	भीष्म पर्व्व, द्रोण पर्व्व,	७ द्रोण पर्व्व
संग्रह शिरोमणि	महिम्न स्तोत्र	३ तीसरे हिस्सा में क-	८ कर्ण पर्व्व
भगवद्गीता सटीक	संस्कृत भा॰टी॰स॰	र्ण पर्व्व, शल्य पर्व्व,	९ शल्य पर्व्व व गदा
दुर्गापाठ सटीक	अमरकोष	गदा पर्व्व, सौप्तिक प॰	व सौप्तिक पर्व्व मेये
विष्णु भागवत	याज्ञवल्क्य स्मृति	र्व्व, यौशिक पर्व्व, वि-	यौशिक व विशोक
भविष्योत्तर पुराण	सन्ध्या पद्धति	शोक पर्व्व, स्त्री पर्व्व,	व स्त्री पर्व्व
अपराधभञ्जन स्तोत्र	व्रतार्क	शान्ति पर्व्व, में राजधर्म्म	१० शान्ति पर्व्व राज
दुर्गा स्तोत्र	भगवद्गीता टी॰ ह॰ ब॰	आपद् धर्म्म मोक्ष -	धर्म्म व आपद् धर्म्म
कायस्थ कुल भास्कर	भगवद्गीता टी॰ आ॰ गि॰	धर्म्म	व मोक्ष धर्म्म व दानधर्म्म
कायस्थ धर्म निरूपण	गीत गोविन्द	४ हिस्सा में शान्ति	११ अश्वमेध आ-
तथा छोटा	कथा सत्यनारायण परमार्थसार	पर्व्व दान धर्म्म अश्व	श्रम वासक मुशल
मथुरा सभा	शार्ङ्गधर संहिता	मेध आश्रम वासि-	पर्व्व महाप्रस्थान
ज्योतिष	पाराशरी सटीक	क पर्व्व व मौसल प-	स्वर्गारोहन
मुहूर्त्त गणपति	शीघ्रबोध सटीक	र्व्व व वर्ण प्रस्थान	१२ हरि वंश पर्व्व
मुहूर्त्त चक्र दीपिका	लघु जातक	स्वर्गारोहन पर्व्व।	रामायण राम विलास
मुहूर्त्त चिन्तामणि सटीक	षट् पंचाशिका	हरि वंश पर्व्व	रामायण तुलसी कृत
मुहूर्त्त मार्त्तण्ड सटीक	सामुद्रिक	महा भारत पर्व्व अ-	रामायण सटीक मेये
मुहूर्त्त दीपक	भाषा (इतिहास)	लहदा भी हैं	मानसदीपिका कोष
वृहज्जातक सटीक	महाभारत	१ आदि पर्व्व	आदि तथा जिल्द

आनन्दाऽमृत वर्षिणी

آنندامرت برکھنی

श्री मत् परमहंस परिव्राज स्वामी

आनन्द गिरि महाराज रचित

जिस में

पञ्चदशी वेदान्तसार, तत्त्वानुसन्धान, श्री मद्भगवद्गीता, आत्मबोध
यन्त्र मांडूक्य, बृहदारण्य, छान्दोग्य निषद्, और पञ्ची करण वार्ति-
कादि श्री शङ्कर भगवान भाष्यकार से आदि ले अनेक आचार्य्यों
के रचित ग्रन्थों का सारांश विशेष श्रुति वेदवाक्य और हरिभक्तों
के ज्ञानभक्ति वैराग्य के दृढ़ार्थ श्री कृष्णाचन्द्र परब्रह्म की महिमा
और मुक्ति का उपाय दृष्टान्त पूर्वक बालकों के सुख बोध और पाठ
निमित्त अति सुगम और ललित वार्त्तिक में वर्णित है ॥

तीसरी बार

लखनऊ

मुन्शी नवल किशोर के छापेख़ाने में मुद्रित हुई ॥

फ़रवरी सन् १८८१ ई०

सूचीपत्र पोथी के पत्रों की संख्या से एक यंत्र चार ॥ पत्र पर पृथक् है इस में बहुत उदाहरण लिखे हैं ॥

जाग्रत् आदि अवस्थाओं का लक्षण ॥

उपासना का प्रसंग ६ पृष्ठ २ पंक्ति तक अ-
ध्यारोप कहा जाता है ॥

शास्त्र युक्ति प्रत्यक्ष करके तीन प्रकार का अपवाद
तत्त्वं पदार्थों का शोधन ॥

तत्त्वं पदों की लक्षणा करके और सामान्याधि-
करणाय विशेषण विशेष्य भाव लक्ष्य लक्षण भाव इन तीन
सम्बन्ध करके जो एकता है उसका प्रसंग अध्याय की समा-
प्ति पर्य्यन्त है द्वितीय अध्याय तत्त्वमसि महा वाक्य के
अर्थ में है ६९ के पृष्ठ में यो अध्याय समाप्त हुआ ॥

तीसरे अध्याय का ६९ के पृष्ठ में प्रारम्भ हुआ
८३ के पृष्ठ में समाप्त हुवा उसमें ज्ञान ज्ञानी के लक्षण नि-
श्चय करने में ज्ञानी अज्ञानी का बहुत संवाद है और श्रेष्ठ
मध्यम कनिष्ठ भेद करके जीवन्मुक्त का लक्षण विदेह मु-
क्त का लक्षण ज्ञान उपरति वैराग्य का हेतु आदि चार चार
भेद करके फल के सहित लक्षण ज्ञानी ब्रह्मवित्त का ब्रह्म
विदादि भेद करके चार प्रकार का लक्षण है प्रथम मुक्ति
आदि का लक्षण लिखकर फिर ज्ञान की सात भूमिका
लिखकर फिर श्रुति स्मृति आदि प्रमाण पूर्वक और
अनेक दृष्टान्त युक्ति शंका समाधान पूर्वक इस बात कूं
सिद्ध किया है जो कनिष्ठ जीवन्मुक्त किसी हेतु से संपादन

न हो सके तो विदेह मुक्ति में सन्देह नहीं ॥

चौथे अध्याय का ८३ के पृष्ठ में प्रारम्भ हुआ ८४ के पृष्ठ में समाप्त हुवा उस में अन्तरंग बहिरंग भेद करके बहुत ज्ञान के साधन लिखे हैं ॥

पाँचवे अध्याय का ९४ के पृष्ठ में प्रारम्भ हुवा १०४ के पृष्ठ में समाप्त हुवा उस में सतोगुण रजोगुण तमोगुण का लक्षण और यज्ञ तप सुखदान कर्मादि का सत्वादि भेद करके तीन तीन प्रकार का भेद फल के सहित लिखा है ॥

छठे अध्याय १०४ के पृष्ठ में प्रारम्भ हुवा ११५ के पृष्ठ में समाप्त हुवा उस में श्रुति स्मृति युक्ति इत्यादि प्रमाण पूर्वक इस बात कूं सिद्ध किया है कि मुक्ति का साधन मुख्य ज्ञान है कर्मादि परम्परा करके गौण हैं और जीव ब्रह्म की एकता पूर्णतादि में बहुत वादी की शंका है सबका श्रुति स्मृति आदि प्रमाण पूर्वक समाधान किया है ॥

सातवें अध्याय का ११६ के पृष्ठ में प्रारंभ हुवा १२७ के पृष्ठ में समाप्त हुवा उसमें जीवात्मा परमात्मा का लक्षण और जीव ब्रह्म की एकता और एकता पूर्णता नित्य मुक्ता दि सिद्धि में बहुत दृष्टान्त हैं और जो जो वादीने शंका करी सबका श्रुति स्मृति आदि प्रमाण पूर्वक समाधान किया.

आठवें अध्याय का १२८ के पृष्ठ में प्रारंभ हुवा १४९ के पृष्ठ में समाप्त हुआ उस में अहं ब्रह्मास्मि इस अभ्यास करने

के साधन लिखे हैं और मुख्य तात्पर्य वेद शास्त्रों का किस मत में है और क्या है और श्रुतियों का अविरोध और यो सब जो हम कहते हैं इसका भले प्रकार शारीरक भाष्य में निश्चय हो सक्ता है यो प्रसंग है और कर्म उपासनादि में जो मुख्य मुक्ति के साधन हैं उनका निश्चय और वेदान्त शास्त्र के मत से मुक्ति संसार परमेश्वर जीव का जो लक्षण उस कूं दृष्टान्त इतिहास युक्ति श्रुति स्मृति आदि प्रमाण पूर्वक सिद्ध किया है और संसार मुक्ति परमेश्वर जीव का नय्यायक सांख्य पूर्वक मीमांसा शास्त्र वाले और भी बौद्धादि जैसा जैसा कहते हैं उन का मत भी किंचित् संक्षेप करके लिखा है॰

नवें अध्याय का १४९ के पृष्ठ में प्रारम्भ हुआ १५६ के पृष्ठ में समाप्त हुवा उसमें अज्ञान का लक्षण और अज्ञान का कारण जो आसुरी सम्पत् के अवगुण उनका वर्णन और काम क्रोधादि कूं ज्ञान की सिद्धि के लिये और पीछे ज्ञान के जीवन्मुक्ति की सिद्धि के लिये त्यागना चाहिये इस बात में गुरु शिष्य का सम्वाद है ॥

दशवें अध्याय का १५७ के पृष्ठ में प्रारम्भ हुवा १५८ के पृष्ठ में समाप्त हुवा उसमें जीवन्मुक्ति के पांच प्रयोजन और अन्तःकरण के निरोध का प्रकार और जीवन्मुक्ति के साधन लिखे हैं फिर श्री रामचन्द्र जी महाराज जी की कृपा से आनन्दाऽमृत वर्षिणी समाप्त है १६० से १९२

के पृष्ठ में प्रश्नोत्तराख्य लिखी है ॥

पञ्चदशी

ऐहिकामुष्मिकव्रातसिद्ध्यै मुक्तेश्च सिद्धये बहुकृत्यं पुरा-
ऽस्याभूत्तत्सर्वमधुना कृतं ४० तदेतत्कृतकृत्यत्वं प्रतिः
योगपुरस्सरं अनुसंदधदेवायमेवं तृप्यति नित्यशः ४१ दुः
खिनोऽज्ञास्संसरन्तु कामं पुत्राद्यपेक्षया परमानन्दपूर्णोऽहं
संसरामि किमिच्छया ४२ अनुतिष्ठन्तु कर्माणि परलोक
यियासवः सर्वलोकात्मकः कस्मादनुतिष्ठामि किं कथं ४३
व्याचक्षतां ते शास्त्राणि वेदानध्यापयन्तु वा येऽत्राधिकारि-
णो मे तु नाधिकारोऽक्रियत्वतः ४४ निद्राभिक्षे स्नानशौचे ने-
च्छामि न करोमि च द्रष्टारश्चेत्कल्पयन्ति किं मे स्यादन्यकल्प
नात् ४५ गुंजापुंजादि दह्येत नान्यारोपितवह्निना नान्या
रोपितसंसारधर्मानेवमहं भजे ४६ शृण्वन्त्वज्ञाततत्त्वा-
स्ते जानन्कस्माच्छृणोम्यहं मन्यन्तां संशयापन्ना न मन्येऽ
हमसंशयः ४७ विपर्यस्तो निदिध्यासेत् किं ध्यानमविप
र्य्यये देहात्मत्वविपर्यासं न कदाचिद्भजाम्यहं ४८ अहं
मनुष्य इत्यादिव्यवहारो विनाप्यमुं विपर्यासं चिराभ्य
स्तवासनातोऽवकल्पते ४९ प्रारब्धकर्मणि क्षीणे व्यव-
हारो निवर्तते कर्माक्षये त्वसौ नैव शाम्येद्ध्यानसहस्रतः ॥
५० विरलत्वं व्यवहृतेरिष्टं चेद्ध्यानमस्तु ते अबाधिका

के साधन लिखें हैं और मुख्य तात्पर्य वेद शास्त्रों का किस मत में है और क्या है और श्रुतियों का अविरोध और ये सब जो हम कहते हैं इसका भले प्रकार शारीरक भाष्य में निश्चय हो सका है ये प्रसंग है और कर्म उपासनादि में जो मुख्य मुक्ति के साधन हैं उनका निश्चय और वेदान्त शास्त्र के मत से मुक्ति संसार परमेश्वर जीव का जो लक्षण उस कूं दृष्टान्त इतिहास युक्ति श्रुति स्मृति आदि प्रमाण पूर्वक सिद्ध किया है और संसार मुक्ति परमेश्वर जीव का नय्यायक सांख्य पूर्वक मीमांसा शास्त्र वाले और भी बौद्धादि जैसा जैसा कहते हैं उन का मत भी किंचित् संक्षेप करके लिखा है॥

नवें अध्याय का १४९ के पृष्ठ में प्रारम्भ हुआ १५६ के पृष्ठ में समाप्त हुवा उस में अज्ञान का लक्षण और अज्ञान का कारण जो आसुरी सम्पत् के अवगुण उनका वर्णन और काम क्रोधादि कूं ज्ञान की सिद्धि के लिये और पीछे ज्ञान के जीवन्मुक्ति की सिद्धि के लिये त्यागना चाहिये इस बात में गुरु शिष्य का सम्वाद है॥

दशवें अध्याय का १५७ के पृष्ठ में प्रारम्भ हुवा १५८ के पृष्ठ में समाप्त हुवा उसमें जीवन्मुक्ति के पांच प्रयोजन और अन्तः करण के निरोध का प्रकार और जीवन्मुक्ति के साधन लिखे हैं फिर श्री कृष्णचन्द्र जी महाराज जी की कृपा से आनन्दामृत वर्षिणी समाप्त है १५० से १६२

के पृष्ट में प्रश्नोत्तराख्य लिखी है ॥

पञ्चदशी

ऐहिकामुष्मिक व्रात सिद्धै मुक्तेश्च सिद्धये बहु कृत्यं पुरा-
स्याभूत्तत्सर्व मधुना कृतं ४० तदेतत्कृत कृत्यत्वं प्रति-
योगि पुरस्सरं अनु संदधदेवाय मेवं तृप्यति नित्यशः ४१ दुः
खिनोऽज्ञाः संसरन्तु कामं पुत्राद्यपेक्षया परमानन्द पूर्णोऽहं
संसरामि किमिच्छया ४२ अनु तिष्ठंतु कर्माणि परलोक-
यियासवः सर्व लोकात्मकः कस्मा दनु तिष्ठामि किं कथं ४३
व्याचक्षतां ते शास्त्राणि वेदानध्याय यंतु वा येत्राधिकारि-
णो मेतु नाधिकारो क्रियत्वतः ४४ निद्रा भिक्षे स्नान शौचे ने
च्छामि न करोमि च द्रष्टा रश्चे त्कल्प यंति किं मे स्यादन्यकल्प
नात् ४५ गुंजा पुंजादि दह्येत नान्या रोपित वह्निना नान्या
रोपित संसार धर्मा नेव महं भजे ४६ शृण्वंत्वज्ञात तत्त्वा-
स्ते जानन् कस्मा च्छृणोम्यहं मन्यंतां संशया पन्ना न मन्ये-
हम संशयः ४७ विपर्यस्तो निदिध्यासेत् किं ध्यानम विप-
र्य्यये देहात्मत्व विपर्यासं न कदाचिद्भजाम्यहं ४८ अहं
मनुष्य इत्यादि व्यवहारो विनाप्य मुं विपर्यासं चिराभ्य
स्त वासनातोऽव कल्पते ४९ प्रारब्ध कर्मणि क्षीणे व्यव-
हारो निवर्तते कर्माक्षये त्वसौ नैव शाम्येद्ध्यान सहस्रतः ॥
५० विरलत्वं व्यवहृते रिष्टं चेद्ध्यान मस्तु ते अबाधि का-

व्यवहृतिं पश्यन् ध्यायाम्यहं कुतः ५१ विक्षेपो नास्ति य-
स्मान्मे न समाधिस्ततो मम विक्षेपो वा समाधिर्वा मनसः
स्याद्विकारिणः ५२ नित्यात्मभवरूपस्य को मेवानुभवः
पृथक् कृतं कृत्यं प्रापणीयं प्राप्तमित्येव निश्चयः ५३ व्य-
वहारो लौकिको वा शास्त्रीयो वान्यथापि वा ममाकर्तुर
लेपस्य यथारब्धं प्रवर्त्ततां ५४ अथवा कृत्यकृत्योऽपि
लोकानुग्रहकाम्यया शास्त्रीयेणैव मार्गेण वर्तेऽहं काम
मक्षितिः ५५ देवार्चनस्नानशौचभिक्षादौ वर्त्ततां वपुः तारं
जपतु वाक्तद्वत् पठत्वाम्नायमस्तकं ५६ विष्णुं ध्यायतु धी-
र्यद्वा ब्रह्मानंदे विलीयतां साक्ष्यहं किंचिदप्यत्र न कुर्वे नापि
कारये ५७ कृतकृत्यतया तृप्तः प्राप्तप्राप्यतया पुनः तृप्यन्ने
वं स्वमनसा मन्यतेऽसौ निरंतरं ५८ धन्योऽहं धन्योऽहं नित्यं स्वा-
त्मानमंजसा वेद्मि धन्योऽहं धन्योऽहं ब्रह्मानंदो विभाति मे
स्पष्टं ५९ धन्योऽहं धन्योऽहं दुःखं संसारिकं न वीक्ष्येऽद्य धन्यो-
हं धन्योऽहं स्वस्याज्ञानं पलायितं क्वापि ६० धन्योऽहं धन्योऽहं
कर्तव्यं मे न विद्यते किंचित् धन्योहं धन्योहं प्राप्तव्यं सर्वम-
द्य संपन्नम् ६१ धन्योऽहं धन्योऽहं तृप्तेर्मे को पमा भवेल्लोके
धन्योहं धन्योहं धन्यो धन्यः पुनः पुनर्धन्यः ६२ अहो पुण्य
महो पुण्यं फलितं फलितं दृढं अस्य पुण्यस्य संपत्ते रहो
वयमहो वयं ६३ अहो शास्त्र महो शास्त्र महो गुरुरहो गुरुः
अहो ज्ञान महो ज्ञान महो सुखं महो सुखं तृप्ति ६४ इति
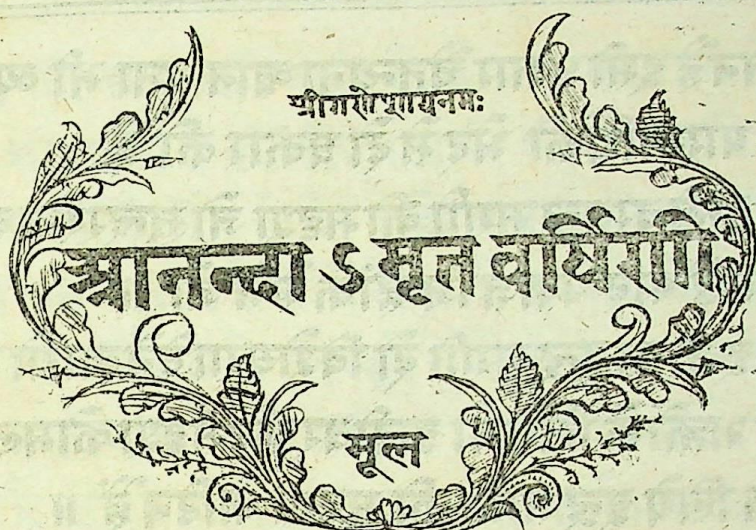
श्री सच्चिदानन्द स्वरूप जो इन्दिरेश्वर

टीका ॥ श्री लक्ष्मी और शोभा और माया कूं कहते हैं। तीनों करके अर्थ लगता है सच्चिदानन्द लक्ष्मी पति शोभावान् माया के स्वामी माया करके युक्त परंतु विशेष। यों है सच्चिदानन्द माया के स्वामी सच्चिदानन्द में तीन पद हैं सत चित आनन्द अब यों देखना चाहिये कि तीन पद क्यों कहे इसका यो कारण है जो केवल सत कहते तो न्याय शास्त्र वाले आकाश कूं भी सत कहते हैं सो। वह जड़ है इसलिये चित भी कहा वह दुःख रूप वा आनन्द रूप है इसलिये आनन्द भी कहा और सत्ता दो प्रकार की है व्यावहारिकी पारमार्थिकी व्यावहारिक। सत्ता वह है जो देहादि में है और पारमार्थिकी सत्ता जो। सच्चिदानन्द ब्रह्म में है इस जगे पारमार्थिकी सत्ता से।

दूसरा पर अर्थात् परला निर्गुण ॥

मू॰। विषय किसका मन नहीं लगाता है और किस की वाणी यों नहीं चाहती है कि परमेश्वर का कीर्तन करना चाहिये परन्तु बिना आत्म हत्यारे के संसार में तीन प्रकार के पुरुष हैं मुक्त १ मुक्ति की इच्छा वाले २ विषयी ३ मुक्त तो शुक सनकादि ज्ञानी जन सदा आपके गुणों का कीर्तन करते रहते हैं मुक्त जन ब्रह्मानन्द कूं अनुभव करते हुये स्मरण करते हैं कि यो ब्रह्मानन्द परमेश्वर की कृपा है और मुक्ति की इच्छा वालों कूं संसार रूप रोग की योंहीं परमेश्वर का कीर्तन करना परम औषधि है २ और विषयी जनों कूं आप के चरित्र बिहारादि परम प्रिय लगते हैं हे भक्त प्रिय बृहस्पति आदि की जो स्तुति क्या आप कूं आश्चर्य्य हे तात्पर्य्य कुछ आश्चर्य्य नहीं है क्योंकि समस्त परम अमृत रूप मधुर कोमल कोमल वाणी सब आपही की कहानी हैं और जो यों कही फिर तुम्हारी वाणी क्या आश्चर्य्य होगी हे परमेश्वर मेरी बुद्धि में तो यो अर्थ निश्चय किया है अपनी वाणी कूं आपके गुणों का कथन करके पवित्र करता हूं प्रार्थना यों है हे कृष्णचन्द्र मेरी यों बालक कीसी हठ जानकर आप ने सर्व प्रकार क्षमा करनी ग्रन्थ के आदि मध्य अन्त में

(निवेदन)

निर्विघ्न समाप्ति के लिये और आस्तिक मार्ग प्रवृत्ति के। लिये शिष्टाचारानु मित्त और श्रुति बोधित जो तीन प्रकार का मंगल नमस्कार आशीर्वाद वस्तु निर्देश होता है सो यहाँ तक मंगलाचरण है ॥

विद्वान् जनों से प्रार्थना यों है जो यो मेरा भाषा में। लिखा है जो श्रुति स्मृति वेदान्त शास्त्र से विरुद्ध होतो अंगीकार नहीं करणा और जो किसी जगे प्रकरण सगति पुनरुक्ति आदि दोष प्रतीत होते हों तो बना देने। और जो यो भाषा अच्छी न होवे और तात्पर्य्य वक्ता का भले प्रकार न प्रतीत होता हो तो जैसी विद्वान् पसन्द करें वैसाही लिख देनी और परमेश्वर के स्वरूप का जो इसके विचारने में चिंतवन करने में आता है इस गुण। करके अंगीकार करना जोग है कुछ वाणी की चतुराई तो इस में है नहीं और जो कहीं बुद्धि के भ्रम से अन्यथा। लिखा गया हो उसको बना देना तात्पर्य्य सब प्रकार। आपने भी क्षमा करनी योग है मेरे अभिप्राय कूं विचारना चाहिये वक्ता का इसके लिखने में क्या अभिप्राय है सो सुनो मैंहीं लिखे देता हूं श्रीकृष्णचन्द्र ने गीता शास्त्र में कहा है इस गीता शास्त्र कूं जो मेरे भक्तों कूं धारण करावेगा तो मेरे विषय परम भक्ति करके मुझ कूं प्राप्त होवेगा और स्वामी विद्यारण्य भारती तीर्थ जीने पञ्च

इसी में कहा है किसी उपाय करके ब्रह्म का सदा चिन्तव-
न करना जो एकान्त में बैठता तो ब्रह्म ही का चिन्तवन।
करना और जो दूसरे से परस्पर बात करनी तो ब्रह्म ही की
करनी और जो किसी कूं कथन करना तो ब्रह्म ही का।
करना यो जो एक पर होना है इसी कूं विद्वान् ब्रह्मा-
भ्यास कहते हैं सो मुझ कूं यो उपाय ब्रह्म के चिन्तवन।
करनेका अच्छा प्रतीत होता है –

पञ्च दशी वेदान्त सार तत्त्वानुसन्धान श्री भगवद्गीता
टीके सहित और आत्म बोधादि पोथी समीप रख कर।
जितनी मेरी बुद्धि थी उन्हों कूं विचार विचार जो सीधा
खुलासा अर्थ बालकों की समझ में आवे औ अर्थ आ-
नन्दामृत वर्षिणी में लिखा है बुद्धिमान में इस आनन्दा
मृत वर्षिणी कूं एक बेर श्रद्धा भक्ति करके और चित्त कूं
एकाग्र करके कुतर्क के बिना सद्गुरु से जैसे गुरु वेद गी-
ता में लिखे हैं तात्पर्य्य वेद शास्त्र के तात्पर्य्य कूं जानने
वाले और ब्रह्म निष्ठ उन्हों से सुनना योग्य है जो केवल।
वेद शास्त्रार्थ के जानने वाले हैं और ब्रह्म निष्ठ नहीं वे।
विज्ञान अनुभव नहीं कह सकेंगे और जो केवल ब्रह्म नि-
ष्ठ हैं वे युक्ति दृष्टान्त शंका समाधान पूर्वक नहीं कह सकें-
गे इसलिये वेद शास्त्रार्थ के जानने वाले और ब्रह्म निष्ठ।
गुरों से सुनना योग्य है जो इस में अनुष्ठान कहा है उस कूं।

सुनने वाले की इच्छा हो करो वा मत करो तात्पर्य यो है जो सुनेगा तो अपने आनन्द के लिये आपही अनुष्ठान करेगा दृष्टान्त कहते हैं एक राजा था कभी पण्डितों कूं कुछ न देता था न कभी कथा सुनता था किसी विद्वान् ने सब पण्डितों से कहा कि तुम राजा से कहो हे राजन् आप हमारी कथा सुनो धन दो दान दो पण्डितों ने कहा महाराज हम अनधिकारी से कौन माथा मारे प्रयोजन के बिना तो मन्द भी नहीं प्रवर्त होता है विद्वान ने उन्हों कूं दृष्टान्त दिया जो कलींगेन्द्र की देहली में तरुण स्त्री दूध पी हुई किसी प्रकार प्राप्त हो जाओ फिर मैथुन की इच्छा करो वा मत करो अब दृष्टान्त और दार्ष्टान्त बिचारो क्या। ओ राजा पायगा है जो पण्डितों की कथा सुनकर मुक्ति के लिये धर्म दानादि नहीं करेगा और क्या वो स्त्री पत्थर है कि उसकूं ऐसी जगे अपने आनन्द के लिये काम का। आविर्भाव नहीं होगा ऐसेही क्या इस ग्रन्थ का सुनने वाला पायगा है जो निरतिशय आनन्द के लिये। अनुष्ठान न करेगा ॥

टी॰। जिससे सिवाय और किसी जगे ब्रह्म लोकादि। में आनन्द नहीं ॥

मू॰। जो अर्थ इस आनन्दामृत वर्षिणी में लिखना है। उसकी संगति के लिये जहां यो लिखेंगे प्रथम ज्ञान के

चार साधन हैं वहांतक उपोद्घात कथा है सो सुनो ॥
टी॰। वाञ्छित अर्थ कूं मन में रखकर प्रथम और प्रसंग कहना
मू॰। जो एक चैतन्य सदानंद शुद्ध ब्रह्म नित्य मुक्त सो मायोप-
हित हुवा ईश्वर १ और ओही चैतन्य समष्टि सूक्ष्म उपाधि
करके उपहित हिरण्य गर्भ २ और वोही चैतन्य समष्टि
स्थूल उपाधि करके उपहित विराट ३ इन तीन भावों कूं
प्राप्त होता भया और ओही चैतन्य अविद्योपहित हुआ
प्राज्ञ १ और व्यष्टि सूक्ष्म उपाधि करके उपहित तैजस २
और व्यष्टि स्थूल उपाधि करके उपहित विश्व ३ इन तीन
भावों कूं नाना प्रकार का जीव होता भया फिर वे ईश्वर जी-
वों के धर्म अर्थ काम मोक्ष के लिये सृष्टि स्थिति संहार कूं
करते भये धर्मादि में मोक्ष मुख्य है और तीन धर्मादि गौ-
ण हैं और धर्मादि तीन के दो दो फल हैं मुख्य फल परम्प-
रा करके तीनों का मोक्ष है और स्वर्गादि गौण हैं धर्म का।
मुख्य फल मोक्ष है और स्वर्गादि गौण हैं स्वर्गादि फल
जो वेदों में कहे हैं वे ऐसे हैं जैसे बालक की शोभा के।
लिये कान छेदन कराना और मोदकादि का फल कथ-
न कर देना अभिप्राय तो उन्हों का जो है सो है श्रुति माताकि
सदृश हित ॥
टी॰। परिणाम अन्त में सुख हो जिसके ॥
मू॰। चाहमी वाली है ऐसे किसी का पुत्र रक्तकी मृत्तिका

खाया करता था उसकी माताने उसकूं बहुत बरजा उसने
नमाना हारकर माताने कहा हे पुत्र यो गंगाजी की मृत्ति-
का खाया कर बहुत सुन्दर है विचारो माता का अभिप्राय
गंगाजीके मृत्तिका के खिलाने में नहीं है रस्तेकी मृत्तिका
के वर्जने में उसका अभिप्राय है ऐसेही यो मूर्ख जीव रस्ते
की मृत्तिका की नाईं शब्दादि विषयों कूं इष्ट जानता है श्रुति
ने यो समझा इन विषयों में तो स्वर्गादि अच्छे हैं तात्पर्य तो
श्रुति का मुक्ति में है इसी हेतु से मोक्ष मुख्य है और उपासन
इसलिये है किसी का पुत्र जगे जगे वृथा फिरता था समे
सिर नहीं हाथ आता था उसके पिताने विचारकर पुत्रसे
कहा कि तू इस मकान पर बैठा रहा कर कुछ उसकूं ला-
लच दे दिया तात्पर्य्य जब काम पड़ेगा यहां से बुला लूंगा
वैसेही यो मन कहीं यज्ञ दानादि के फल स्वर्गादि में कहीं
शब्दादि विषयों में मृग तृष्णावत भूला भागा भागा फिरता
था कभी शम नहीं होता था जो आत्म स्वरूप का विचार
करे इसलिये श्रुति में एकाग्र चित्त के लिये उपासना कही
है विचार देखो एकाग्र चित्त के विना श्रवण मनन नि दि-
ध्यासन ये जो मुख्य साधन मुक्ति के हैं सो नहीं होसक्ते हैं १
इसी प्रकार अर्थ जो अशरफी रुपयादि करके जगत में
प्रसिद्ध होना और जगत के सुख सम्पादन करने गौण हैं।
और रुपयादि खर्च करके धर्म करना कथा श्रवण करना

सन्तों का संग करना तीर्थों का सेवन करना मुख्य फल उ-
न्हों का भी परम्परा करके मोक्ष है २ ऐसे ही काम अपने
सुख के लिये खाना पीना और आनन्द के लिये स्त्री का
संग और स्थान वस्त्रादि में जो सुख बुद्धि सो गोसा और
भोजनादि वास्ते धर्म के और श्रवणादि के लिये शरीर की
रक्षा करनी और स्त्री का संग वास्ते पुत्र की उत्पत्ति के वो
भी किसी अंश में मुक्ति का हेतु है इसका भी परम्परा कर
के मुख्य फल मोक्ष है ३ तात्पर्य्य संसार में पुरुषार्थ मु-
ख्य मोक्ष है वे जो अविद्योपहित जीव उन्हों में से श्रुति
स्मृति जो परमेश्वर की आज्ञा है उन्हों कूं जो करते भये
उन्हों की उपासना के लिये जैसी उन्हों कूं मूर्त्ति परमेश्वर
की वांछित हुई वेही मायोपहित ईश्वर ब्रह्मा विष्णु म-
हेश सूर्य शक्ति गणेशादि मूर्त्तिओं कूं धारण करते भये सो
सूर्य्य के लोक वैकुण्ठादि में और भक्तों के हृदय में सदा
वास करते रहते हैं वे जो विष्णु भगवान् हैं सो भक्तों के
उद्धार के लिये जो ऐसे भक्त हैं कि सदा जो परमेश्वर की
आज्ञा उसकूं करके शुद्ध किया है अन्तःकरण जिन्होंने
और शमदमादि साधनों करके युक्त मोक्ष की इच्छा वाले
परन्तु बहुत गंभीर जो ऋग् यजुर साम अथर्वण वेद उनके
विचारने में असमर्थ और विना विचार के ज्ञान नहीं होता
है जैसे पदार्थ का भान विना प्रकाश के इसलिये उनकूं

ब्रह्मतत्त्व बिचारने के लिये श्री कृष्णचन्द्र अवतार लेकर चारों वेदों का अर्थ जो कि मुख्य मोक्ष का साधन है अर्जुन कूं निमित्त करके गीता शास्त्र रचते भये और वेही विष्णु व्यासदेव अवतार लेकर भागवतादि पुराण भारतादि इतिहास रचते भये जिन्हों में कर्म उपासना ज्ञान तीनों हैं प्रसंग से गीता कूं भी महाभारत के बीच में लिखा और जो वेदान्त वेदों का सिद्धान्त जिसकूं वेदों का मस्तक कहते हैं उस सिद्धान्त कूं फिर सूत्रों में कथन करते भये तात्पर्य्य के के श्रुतियों का अर्थ एक एक सूत्र में संक्षेप करके कहा वे जो सूत्र और गीता शास्त्र उनका जो अर्थ सोभी बहुत गम्भीर और परमेश्वर का अभिप्राय परमेश्वर जानें या जिस पर उनकी कृपा हो वो जाने पीछे उनके कलियुग के जीवन ने हठ करके पण्डिताई के बल से अपने अपने मत में व्यास सूत्र और गीता जी का अर्थ बना लिया जो अभिप्राय श्री कृष्णचन्द्र और व्यासदेव जी का था वह सिद्ध न हुआ ज्ञानकाण्ड जो साक्षात् मुक्ति का हेतु था लोप हो गया तब सब देवता विष्णु ब्रह्मादि जुड़कर श्री महादेव जी के पास गये सारी व्यवस्था कही महादेवजी ने कहा हम वेदमार्ग की प्रवृत्ति के लिये अवतार लेंगे आपभी सब ब्रह्मा इन्द्रादि अवतार लो फेर महादेव जी महाराज तो श्री शंकराचार्य्य नाम करके और विष्णु जी सनन्दन नाम करके

और ब्रह्मा जी मण्डन मिश्र नाम करके सरस्वती जीके साहित और इन्द्र सुधन्वा राजा नाम करके तात्पर्य इसी प्रकार बहुत देवता अवतार लेते भये क्योंकि जब ज्ञानकाण्ड का लोप होता है तब महादेव जी अवतार लिया करते हैं और सब मतवालों से शास्त्रार्थ करके सब झूठे मतों का खण्डन करके जो सार सिद्धान्त वेद भगवान का है उसकूं स्थापन किया करते हैं राजा का अवतार इसलिये हुआ जो शास्त्रार्थ में झूठी कुतर्क और हठ करेगा और शास्त्रार्थ होकर उसका मत खण्डन होजावे फिर दुराग्रह से न माने अथवा बहुत जुड़कर सामना करें तो राजा उनकूं दंड देंगे पीछे अवतारके॥ ५।६ वर्ष की अवस्था में श्री शंकराचार्य्य जीने संन्यासले-कर १६ वर्ष की अवस्था में १६ भाष्य रचे १० उपनिषद् पर ११ भाष्य व्यास सूत्रों पर एक शारीरक भाष्य विष्णुसहस्त्र नाम भाष्य गीता सनत सुजात भाष्य नृसिंह तापिनी भाष्य तात्पर्य उपनिषद् गीतादि का अर्थ भले प्रकार श्रुति स्मृति युक्ति दृष्टान्त प्रमाण दे दे कर सिद्ध किया और जो गीता भाष्यादि के विचारने में असमर्थ देखे उनके लिये आत्म बोधादि छोटे छोटे प्रकरणों में वोही अर्थ संक्षेप करके लिखते भये फिर सब वादियों कूं शास्त्रार्थ में जय करके दिग विजय करते भये जो वेदों का सार सिद्धान्त था उसकूं प्रकट प्रचार करते भए ऐसा ऐसा शास्त्रार्थ हुआ

चालीस दिन तक मराडन मिश्र से चरचा रही मंडन मिश्र की स्त्री सरस्वती जीका अवतार साक्षी थी उसने पुष्पों की माली दोनोंके गले में डाल दी थी कह दिया था जिस की माला सूखेगी वोही हारेगा चालीस दिनके पीछे मराडन मिश्र की माला सूख गई इसी प्रकार बहुत जगे शास्त्रार्थ हुवा और चारों दिशा में महाराज गये उनके अब तक ज्यो यशी आदि मठ चारों दिशा में विद्यमान हैं और कपाली आदिने जो सामना किया वे कुछ महाराज ने मन्त्रों से मारे कुछ राजा ने मारे बिस्तार इस कथा का तीन दिग्विजय ग्रन्थ हैं उनमें बहुत है तात्पर्य्य योहै जो अच्छे बुद्धिमान हैं उनके लिये तो शारीरक भाष्यादि बड़े ग्रन्थ रचे और जो मन्द बुद्धि हैं उनके लिये आत्म बोधादि छोटे छोटे प्रकरण रच कर ३२ बर्ष की अवस्थामें महाराज तो कैलाश कूं जाते भये फिर जो पद्म पादादि महाराज के मुख्य शिष्य थे उन्होंने भी बहुत ग्रन्थ रचे स्वामी आनन्दगिरि जीने तो सब भाष्यादि ग्रन्थों परटीकाकरीऔर सुरेश्वराचार्य्य महाराज ने वार्त्तिक बनाया पीछे उनके स्वामी शंकरानन्द भगवान और विद्यारण्यादि जी ने आत्म पुराण और पञ्चदशी वेदान्त सारादि बहुत सहस्राणि ग्रन्थ रचेवे ग्रन्थ अब तक तो परमेश्वर की कृपा से सूर्यवत इस लोक में प्रकाश रहे हैं ॥

अब इस समय में ऐसे जो परमेश्वर के भक्त कि जिन-
की गुरु परमेश्वर में श्रद्धा भक्ति और उनकी यथा शक्ति
आज्ञा करनी परन्तु आत्म बोधादि प्रकरणों के विचारने में
भी असमर्थ उनकूं सुख पूर्वक ब्रह्मतत्व विचारने के लिये ।
और मुख्य मुन्शी बन्सीधर जी कायस्थ भटनागर रहने वा-
ले श्री गंगा यमुना जी के मध्य में इन्द्रप्रस्थ से २२ कोस ।
पूर्व दिशा में श्री कन्दरापुरी प्रसिद्ध सिकन्दराबाद के लिये
कैसे हैं वे मुन्शी साहब कि जिन्हों के रूप लक्ष्मी विद्या तेज ।
कुल और शमदम क्षमा औदार्यादि बहुत गुण करके युक्त
पतिव्रता स्त्री फिर यो आश्चर्य्य कि ऐसे समय में सत्संगी
परमेश्वर में भक्ति गंभीरादि गुण करके युक्त तात्पर्य्य ऐसे
सज्जन बुद्धिमान् इस समय में होने कठिन हैं जिनकूं व्यव-
हार में राज और परमार्थ में विद्वान् सराहना करते हैं उन्हों ।
की श्रद्धा भक्ति पूर्वक प्रार्थना से उन्हों के उपवन अन्तरगत
मकान कोठी में ठहर कर और श्री स्वामी आत्मा गिरिजी
महाराज रहने वाले प्रथम गुजरात के जिन कूं वेदान्त शा-
स्त्र का अर्थ करामलकवत् है उनकी सहाय से श्री सत्परम
हंस परिव्राज स्वामी मलूक गिरिजी महाराज का अनुचर
शिष्य स्वामी जी के चरण कमलों का पूजने वाला मैं आनंद
गिरि इस आनंदामृत वर्षिणी का बनाने वाला स्वामी जी
और श्री कृष्णचन्द्र महाराज की कृपा से आत्म बोधादि छोटे

छोटे प्रकरणों में जो मैंने अर्थ सुना है उसमें से भी स्वल्प । यथा मति और श्री मद्गीता का भी अर्थ किसी किसी जगे इस आनंदाऽमृत वर्षिणी में लिखूंगा ॥

प्रथम ज्ञान के मुख्य चार साधन हैं उनकूं लिखते हैं ॥

विवेक १ वैराग्य २ शमादि षट्क सम्पत्ति: ३ मुमुक्षुता ४ अर्थ इनका यो है ॥

इस संसार में नित्य अनित्य क्या है और विचार करते करते यो निश्चय करना कि आत्मा नित्य और आत्मा से पृथक् सब अनित्य है १ यहां के देखे सुने जो पदार्थ स्त्री चन्दन मालादि परलोक के जो सुने अमृत नन्दन वनदेवां गनादि सब कूं अनित्य दुखदाई जानकर मनकी इच्छा। पूर्वक सब कूं त्याग देना फिर उनमें दीनता न होनी ब्रह्म। लोक कूं तृणवत् जानना २ तीसरे में ६ भेद हैं शम१ दम२ उपरति ३ तितिक्षा ४ श्रद्धा ५ समाधान ६ इनका। अर्थ यो है मन आदि अन्त:करण की संकल्पादि वृत्तियों कूं रोकना वेदान्त शास्त्र के श्रवण मनन निदिध्यासनके बिना ३ श्रोत्रादि इन्द्रियों कूं शब्दादि विषयों से रोकना देह यात्रा और श्रवणादि के बिना २ यम नियमादि साधनों से अन्त:करण कूं निरोध करके ॥

टी॰। अहिंसा १ चोरी न करनी २ सत्य बोलना ३ ब्रह्म-चर्य्य ४ अपरिग्रह अर्थात शरीर यात्रा से सिवाय संग्रह।

नकरना ५ इन पांच का नाम यम है ॥

और शौच १ संतोष २ तप ३ स्वाध्याय अर्थात प्रणव का जप ४ ईश्वर प्रणिधान अर्थात परमेश्वर में भक्ति ५ इन पांच का नाम नियम है ॥

मू०। सब लौकिक वैदिक कर्मों से उपराम होना ब्रह्मतत्व बिचारने के लिये देह यात्रा मात्र क्रिया करनी और जाग्रत अवस्था सुषुप्ति वत रहनी इसीका नाम उपरती है ३ श्रवणादि में जो जो दुःख सुख पड़े सबकूं सहजाना ४ जो वेदान्त शास्त्र और गुरु ज्ञान के देने वाले कहते हैं उन्हों में विश्वास करना कि इसी प्रकार है ५ श्रवणादि के समय भले प्रकार चित्त कूं समाधान करना ६ तीसरे साधन के ६ भेद हो चुके चौथे साधन का यो अर्थ है मुक्ति को मुख्य पुरुषार्थ समझ कर मुक्ति की नित्य इच्छा रखनी ॥

मुक्ति के ये चार साधन मुख्य हैं और सब साधनों का इनहीं में अन्तर भाव है जो इनका भले प्रकार अनुष्ठान करे तो और किसी साधन की अपेक्षा नहीं है सब साधनों का यो तत्त्व है ॥

ग्रंथ में जो चार अनुबन्ध होते हैं उनकूं लिखते हैं ॥

अधिकारी १ विषय २ सम्बन्ध ३ प्रयोजन ४ इनहीं चार साधनों करके जो सम्पन्न सो इस ग्रंथ के पढ़ने सुनने का अधिकारी १ जीव न ब्रह्म की एकता इस में विषय है २ यो ग्रन्थ बोधक और ग्रन्थ बोध्य इन दोनों का

बोध बोध्यक भाव इस में सम्बन्ध है ३ सब शोक दुःखों की निवृत्ति और परमानन्द की प्राप्ति जिसकूं मोक्ष कहते हैं सो इसका प्रयोजन है ४ इस में दृष्टान्त यो है जैसे रसोई में अन्न का भूका तो अधिकारी १ और जो अन्न में मधुरादि स्वाद हैं सो विषय २ और अन्न बरतनादि का संयोग सम्बन्ध ३ भूक का दूर हो जाना प्रयोजन ४ जो कोई कहे तुम ब्रह्म २ कहते हो दिखाओ आपका ब्रह्म कहां और कैसा है जैसे नास्तिक केवल प्रत्यक्ष प्रमाण मान्ता है। यो बात मूर्खता की है सोई सुनो जैसे किसी वस्तु के सद्भाव में एक प्रत्यक्ष प्रमाण है ऐसे और भी अनुमानादि प्रमाण हैं प्रथम तो प्रत्यक्ष प्रमाण दो प्रकार का है बाहर १ भीतर २ बाहर ज्ञानेन्द्रियों करके शब्दादि विषयों का और पंच भूतों का ज्ञान होता है परन्तु नेत्र करके तो रूप का और पृथ्वी जल तेज का ही ज्ञान होता है और रूप के बिना शब्दादि चार विषयों का और वायु आकाश का नेत्र से ज्ञान नहीं होता है १ और भीतर दुःख सुख भूक शोकादि का ज्ञान अन्तःकरण करके होता है और सुषुप्ति में जो अज्ञान उसका ज्ञान साक्षी चैतन्य करके होता है उस पूर्व पक्षी से बूझना चाहिये कि दुःख सुखादि जिसकूं होते हैं क्या वो नेत्र से दिखा सक्ता है और जो कहे कि दुःखादि कूं नेत्र से कौन दिखा सके तो हम कहते

हैं ब्रह्म कूं नेत्र से कौन दिखा सके और श्री कृष्ण चन्द्रादि जो मूर्त्ति हैं वे माया मय मूर्त्ति हैं क्योंकि यो वेद शास्त्रों का सिद्धान्त है कि जो दृश्य है सो अनित्य है (गोगोचर जहं ल-गि मन जाई। सो सब सुख माया जानो भाई) जो उन मूर्त्तियों कूं कोई परमार्थ से सच्ची कहे तो वे मूर्त्ति अनित्य हैं परमे-श्वर कूं वेद शास्त्र नित्य कहते हैं तात्पर्य्य परमेश्वर वास्तव अमूर्त्त है जैसे दुःखादि अन्तः करण करके जाने जाते हैं ऐसे सूक्ष्म दरशी पुरुषों कूं सूक्ष्म बुद्धि करके अन्तर्मुख वृत्ति कर-के और प्रत्यक्षादि प्रमाण करके प्रमेय चैतन्य का अप-रोक्ष हो सक्ता है वेदान्त शास्त्र में ६ प्रमाण हैं प्रत्यक्ष १ अनुमान २ उपमान ३ शब्द ४ अर्थापत्ति ५ अनुपलब्धि ६ इनका अर्थ भाषा में भले प्रकार लिखने से बहुत बिस्ता-र होता है इसलिये नाम मात्र रक्खा दिखाते हैं प्रत्यक्ष का अर्थ तो पीछे लिखा गया अनुमान से इस प्रकार ॥

टी॰। अनुमान के पांच अंग हैं पक्ष १ साध्य २ हेतु ३ व्याप्ति ४ दृष्टान्त ५ इसलिये पांच अवयवी अनुमान क-हा जाता है जैसे पक्ष १ कियो पर्वत - साध्य २ अग्निवा-ला हेतु ३ धूम होने से - व्याप्ति ४ जहां जहां धूम होता है वहां निश्चय अग्नि होती है - दृष्टान्त ५ जैसे रसोई के मकान में

मू॰। ज्ञान होता है कोई मनुष्य जंगल में चला जाता है अग्नि की इच्छा हुई देखा पर्वत में धूम उठ रहा है वो अनु

मान करता है वो पर्वत अग्निवाला है धूम होने से जहां जहां धूम होता है वहां वहां निश्चय अग्नि होती है जैसे रसोई के मकान में विचार देखो अग्नि प्रत्यक्ष नहीं है परन्तु पर्वत में अग्नि का होना प्रमाण है २ उपमा करके इस प्रकार ज्ञान होता है गवय एक पशु होता है एक पुरुष ने उसकूं कभी नहीं देखा था नाम सुना था उसने किसी जंगली आदमी से पूछा कि गवय कैसा होता है जंगलीने उत्तर दिया कि गोकी सदृश होता है कुछ एक अन्तर होता है वो पुरुष एक दिन जंगल में गया उसने गवय कूं देखा उस गवय कूं देखकर उस बात कूं स्मरण किया कि गोकी सदृश होता है निश्चय यो ही गवय है विचार देखो गवय का ज्ञान लेना प्रमाण है ३ शाब्द प्रमाण दो प्रकार का है वैदिक १ लौकिक २ वेदों ने जो कहा सो वैदिक प्रमाण है जो यो शंका करे कि वेदोंने तो जीव ईश्वर का भेद भी कहा है और अनेक श्रुति कर्म उपासनादि करके मोक्ष का होना कहती हैं और बहुत श्रुति अन्न मय कोश कूं आत्मा कहती हैं तो यो वेदों का कहा हुआ आपके प्रमाण है या नहीं इसका उत्तर यो है जो श्रुति अन्न मायादि कोशकूं आत्मा कहती हैं और जो कर्म उपासनादि करके मुक्ति का होना कहती हैं सब का अभिप्राय युक्ति से अद्वैत ब्रह्म के बोधन करने का है

देहादि कूं परमार्थ से आत्मा कहना और जीव ईश्वर का
भेद कहना और केवल कर्म उपासनादि से मुक्ति का
हो जाना यो श्रुति का तात्पर्य नहीं है क्योंकि फिर श्रुति
ने निषेध भी किया है कियो नहीं है २ इस वाक्य करके
और बहुत सहस्त्राणि ऐसी ऐसी अर्थ वाली श्रुति हैं
और जो यो शंका करे कि प्रथम श्रुति ने देहादि कूं आत्मा
कहा और जीव ईश्वर का भेद कहा फिर उसकूं निषेध
किया प्रथम हीं एक निर्गुण ब्रह्म का उपदेश क्यों न
किया इसका उत्तर यो है जो श्रुति प्रथम हीं ब्रह्म कूं बो-
धन करती तो ब्रह्म कूं अति सूक्ष्म होने से इस जीव कूं
ब्रह्म का कभी बोधन होता इसलिये श्रुति ने क्रम से
अर्थात् प्रथम कर्म करना कहा फिर उपासना कही और
प्रथम अन्न मायादि कूं आत्मा कहा फिर आनन्द मय
कोशा कूं आत्मा कहा जब जिज्ञासु की बुद्धि आनंद मयादि
कूं विचारते विचारते अति सूक्ष्म हुई तब निर्गुण ब्रह्म
का उपदेश किया अब विचारो कि श्रुति का अन्न मय
कोशादि कूं जो आत्मा कहना है और कर्म उपासना से
मुक्ति का होना यो परमार्थ में तो सच्चा नहीं परंतु निर्गुण
ब्रह्म कूं साक्षात् बोधन करने वाली जो बहुत श्रुति हैं
उन्होंकी यह सब श्रुति उपयोगी हैं इसलिये वेद का
कहा हुआ सब प्रमाण है कोई श्रुति साक्षात् और कोई

कर्म उपासनादि द्वारा परम्परा करके बोधन करतीहैं मू-
र्ख लोग वेदों के तात्पर्य कूं नहीं बिचार के एक एकदेश
वेदों का सुनकर कोई देह कोई इन्द्रिय कोई विज्ञान
मय कोशादि कूं आत्मा बताते हैं कोई केवल कर्मसे कोई
केवल उपासनादि से मुक्ति का होना कहते हैं समस्त
वेदों का तात्पर्य नहीं बिचारते पूर्व पक्ष की श्रुतियों कूं प्रमा-
ण दे दे वृथा वाद करते हैं जैसे कोई मूर्ख अच्छे वैद्य के
समीप बैठा था उस समय एक पुरुष आया उस कूं बहुत
चलने से हार पनका ज्वर था वैद्य ने नाड़ी देखकर कहा
कि मोहन भोग खाओ ज्वर जाता रहेगा उसकूं हार पन से
ज्वर था मोहनभोग के खाने से जाता रहा उस मूर्खने स-
मझा कि बिशेष करके धनवाले बीमार होते हैं उनके लि-
ये यो औषधि बहुत सुन्दर है ऐसा निश्चय करके सब
रोगियों कूं मोहनभोग बताने लगा जिसकूं हार पन का
ज्वर होवे तो अच्छा हो जावे शेष मर जावें ऐसे हीं बहुत
मूर्ख एक एक दो दो औषधि वैद्य से सुनकर वैद्यक करने
लगे न वैद्य के तात्पर्य कूं बिचारा न रोगी के रोगकूं बिचारा
सबकूं एकही औषधि बताने लगे दैव योग से कोई कोई
अच्छा भी हो जावे इसी प्रकार मूर्खने वेद के तात्पर्य कूं न
अधिकारी कूं बिचारते हैं केवल आजीवका के लिये वैस्न-
व शैव शाक्तादि अपने अपने मत का उपदेश करके कह

देते हैं कि योही परम तत्व हे औरोंकी असूयाकरदेते हैं वि-
चारो कि जो सबकूं एक देवताका उपदेश करते हैं तो।
क्या सारी अवस्था में सबके एकही गुण सदा रहता है।
इस दृष्टान्त कूं भले प्रकार विचारो वैद्य तो सद्गुरु की जगे
कि जैसे प्रथम अध्याय में लिखे हैं और वैद्यक की पोथी
वेद और शास्त्रों की जगेऔर रोगी मुमुक्षु की जगे क्यों-
कि तीन प्रकार का रोग हे कफ वायु पित्त और तीनहीं
रोग इस जीव कूं हैं सत्व रज तमो गुण तमोगुणीके लिये
कर्म रजोगुणी के लिये उपासना सत्वगुणी के लिये।
ज्ञान वेदों ने कहा है और उस मूर्ख की जगे इस कलियुग
के ऐसे गुरु कि जो बिना वेदान्त शास्त्र के पढ़े हुए और
बिना वेद शास्त्रों का तात्पर्य जाने हुए मूर्खों कूं चेला।
करते हैं उनकूं केवल अपनी कमाही से प्रयोजन है शि-
ष्य दुःख भोगो या नर्क भोगो सो शिवजीने पार्वतीजीसे
कहा है ॥

श्लोक। गुरवोःवहवः सन्ति शिष्य वित्ताप हारकाः॥
दुर्लभः सगुरुर्देवि शिष्यःसन्ताप हारकः॥२॥

तात्पर्य वेद भगवान का यों है जैसे व्यवहार में मनु-
ष्य सूक्ष्म वास कूं युक्ति करके कहते हैं ऐसे वेद भगवान
भी निर्गुण ब्रह्म कूं युक्ति करके बोधन करते हैं इसबात
के स्फुट होने में मनुष्यों की युक्त कूं लिखतेहैं शारीरक

भाष्य में स्थूला रुंधतीन्याय नाम करके यो युक्ति लिखी
है कुवारी लड़की कूं सौभाग्य के अर्थ अरुंधती का
दर्शन कराया करते हैं प्रथम उस से कहते हैं कि यो
चन्द्र अरुंधती है जब वो चन्द्र कूं जान जाती है फिर
कहते हैं कि यों अरुंधती नहीं है यह सात तारे अरुंध-
ती हैं फिर वैसेही निषेध करके कहते हैं कि यह तीन
तारे हैं फिर उन तीन तारों में से वशिष्ठजी कूं अरुंधती
बताते हैं जब वो लड़की वशिष्ठजी कूं भले प्रकार जान
जाती है पीछे उसकूं भी निषेध करके कहते हैं कि उस
तारे के समीप जो बहुत सूक्ष्म तारा है सो अरुंधती है
जिसके भाग्य अच्छे होते हैं उसको अरुंधती का दर-
शन होजाता है अब विचारना चाहिये कि प्रथम
चन्द्रादि कूं जो अरुंधती कहना है उनका अरुंधती के
बताने में सब वाक्य उपकारी हैं इसलिये सब प्रमाण
हैं जिस काल में वो लड़की अरुंधती को जान जाती है
पीछे उसकूं यो निश्चय होजाती है कि मेरे माता पिता ने
जो प्रथम चन्द्रादि कूं बताया था तात्पर्य उनका अरुंधती
के बोधन करने में था दार्ष्टान्त में फिर भले प्रकार विचा-
रना चाहिये यों तो वैदिक प्रमाण कहा और लौकिक
व्यास वशिष्ठ आप्त कामादि पुरुषों का जो कहा है सो
प्रमाण है लौकिक प्रमाण में भी वोही अरुंधती न्याय

है इस समय में भी आप्त काम ब्रह्मवादी परम हंस सं-
न्यासी विशेष करके हैं और जो इस लोक में अच्छे
गुण कहे जाते हैं कि जिनकूं सब मत वाले अंगीकार
करते हैं और वेद वशिष्ठादि का परम सिद्धान्त हैं और
मुक्ति के मुख्य अंतरंग साधन हैं निराकांक्ष शान्ति निर-
हंकार सन्तोष कोमलता विवेक वैराग्य निरवैरता अ-
मान परोपकार क्षमा शमदमादि ऐसे ऐसे गुण और
विद्या और विज्ञान विशेष करके ब्रह्मवादी संन्यासी
परम हंसों ही में पाते हैं इसलिये उनकूं आप्त काम होने
से उनके वाक्य प्रमाण हैं ४ किसी से बूझा कहो जी
भोजन कर आए उन्होंने कहा हम भोजन दिन में नहीं
करते हैं और रिष्ट पुष्ट देखते हैं अर्थ से यो ज्ञान हुआ कि
रात्री का तो इन्होंने निषेध नहीं किया है रात्रि कूं भोजन
करते हैं विचारो यो ज्ञान सच्चा है या नहीं इसका नाम
अर्था पत्ति प्रमाण है ५ किसीने कहा तुम कहते हो
इस स्थान में घट नहीं है इस में क्या प्रमाण है उसने
उत्तर दिया घट का लाभ न होने से अनुप लब्धि प्रमाण
है ६ तात्पर्य इन प्रमाणों के लिखने का यो है कि ब्रह्म
के सिद्ध करने में ऐसे ऐसे प्रमाण और अनेक युक्ति दृ-
ष्टान्त हैं प्रत्यक्ष वादि आदि कूं तो ऐसे ऐसे उत्तर देने योग्य
हैं कि हे वादी विचार देख ब्रह्म ऐसे ऐसे प्रमाणों से

देखने में आता है ॥

और भेद वादी उपासना वालों और कर्म वादी आदि
कूं यो उत्तर देना योग है जैसे वेद की दृष्टि से तुम सूत की
आदि और परमेश्वर का दास मानते हो ऐसेही वेद ने
भी कहा है तू ब्रह्म है जो यो कहो हम अभी इस योग्य
नहीं हैं ऐसा कहें मैं ब्रह्म हूं हम बूझते हैं किसी प्रतिब-
न्ध से तुमकूं महा वाक्यार्थ अर्थात् मैं ब्रह्म हूं यो अपरोक्ष
न होती यो कहो वेदान्त शास्त्र का श्रवणादि और मैं
ब्रह्म हूं ऐसी अनेक उपासना करनी कहां निषेध हैं और
बिचारो अभ्यास अनजान वस्तु का करते हैं और अभेद
उपासना करने में छंदोग्य उपनिषदादि गीता भाष्या-
दि बहुत ग्रन्थ हैं उनमें ऐसी ऐसी उपासना करनी मैं
ब्रह्म हूं मैं ईश्वर हिरण्य गर्भ बिराट हूं भले प्रकार
ब्रह्म लोकादि फल के सहित लिखी हैं और भेद उपा-
सना में बहुत जगे दोष कहे हैं और भले प्रकार बिचारो
परिपूर्ण कूं परिछिन्न कहना कितना बड़ा अनर्थ है
वेदों में प्रगट लिखा है शोक कूं आत्मा का जाननेवा-
ला तरता है १ उसी आत्मा कूं जान करके मृत्यु कूं
उलंघेगा और कोई रस्ता मुक्ति का नहीं है २ कर्म
धन पुत्र करके मुक्ति नहीं होता है सबका त्यागही
करके मुक्त होता है ३ ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं होती

है ४ ऐसी ऐसी अर्थवाली बहुत श्रुति हैं फिर तुम कूं मैं।
ब्रह्म हूं इस अर्थ ग्रहण करने में क्या वद करना योग्य है।
वेदों का तात्पर्य सुनो कर्म करके तमोगुण का नाश हो-
ता है निद्रा,आलस्य,प्रमादादि,तमोगुण का कार्य है।
प्रातःकाल के स्नानादि कर्म करने से उनका नाश हो-
ता है व्रतादिक करने से इन्द्रियादि का दमन होता है।
दानादि करने से पदार्थों में से आशक्ति दूर होती है तीर्था-
दि करने से घरके लोगों से प्रीति कम होती है परदेश में।
जाकर बुद्धि बढ़ती है तीर्थों में महत् पुरुषों का समागम
होता है उनके सत्सङ्ग करने से संसार से चित्त उपराम।
होता है और भी बहुत इस प्रकार के कर्म कार्य हैं चित्त
से बिचारने योग है अन्तःकरण का बिषयों से उपराम।
होना इसी कूं अन्तःकरण की शुद्धि कहते हैं उपासना
से रजोगुण का नाश होता है विक्षेप तृष्णा लोभादि।
रजोगुण का कार्य है ध्यानादि करके उनका नाश होता
है ऐसे ऐसे साधनों से बढ़ा जो सत्त्वगुण उसकूं प्रकाश
मय शान्त रूप होने से कार्य उसका विवेक,वैराग्य,शम,
दमादि हैं इन साधन सम्पन्न होकर जगत् ब्रह्म बन्ध।
मोक्ष नित्य नित्यादि का बिचार किया बिचार करने से यो
ज्ञान हुआ कि ये सत्वादि तीनों गुण माया के हैं माया कूं मि-
थ्या होने से इन गुणों का जितना कार्य स्थूल सूक्ष्म है सब

(मिथ्या)

मिथ्या है और मैं असंग सच्चिदानन्द नित्य मुक्त हूं इसीकूं ज्ञान कहते हैं योहीं ज्ञान मुक्ति का हेतु है और परम सिद्धान्त तो वेदों का यो है कि यो जगत जीव ईश्वर प्रतिबिम्ब के सहित न कभी हुआ है न होगा नहै एक मन वाणी करके अगोचर प्रत्यगात्मा नित्यानन्द रूप नित्य मुक्त है न किसी का नाश न उत्पत्ति न देह के साथ सम्बंध है न कोई सुख दुःख धर्मवाला न श्रवण करनेवाला साधक न मुक्ति की इच्छावाला न मुक्त है तात्पर्य जो जो है सो है यों श्रुति का अर्थ है प्रथम अध्याय समाप्त हुआ ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

अब अध्यारोप अपवाद न्याय करके निष्प्रपञ्च ब्रह्म में जगत का प्रपंच करके फिर मुक्ति कूं सिद्ध करते हैं मुक्ति महा वाक्यार्थ के ज्ञान से होती है जैसे किसीकूं रज्जु में सर्प की भ्रान्ति है उसका दुःख कम्पादि लौकिक वाक्यार्थ के ज्ञान से नाश होता है यहां के स्त्री चन्दन मालादि और परलोक के अमृत नन्दन बन देवाङ्गनादि की प्राप्ति से उसका दुःख नाश नहीं होता है ऐसे इस जीव के तीन ताप पञ्च क्लेश यहां के और स्वर्गादि के पदार्थों की प्राप्ति से नाश नहीं होते हैं और न कम होते हैं महा वाक्यार्थ के ज्ञान से नाश होते हैं महा वाक्यार्थ

का ज्ञान जब होता है प्रथम पदार्थ का ज्ञान होजावे के
पदों का नाम वाक्य होता है महा वाक्य में तीन पद हैं।
तत् त्वम् असि इसलिये तत् पद का अर्थ अभी आगे।
लिखेंगे उससे प्रथम तत्पदार्थका लक्षण लिखते हैं।
तत्पदार्थका अर्थात ब्रह्मका लक्षण दो प्रकार का है।
तटस्थ १ स्वरूप २ सृष्टि स्थिति लयका जो कारण अ-
र्थात जिससे यो जगत् हुआ है जिसमें ठहर रहा है प्र-
लय समय जिसमें लय होजाता है सो ब्रह्म का तटस्थ।
लक्षण है और सत्‌चित् आनन्दादि स्वरूप लक्षण है
जैसे किसी पुरुषका लक्षण श्याम गौर रंग इतनी अ-
वस्था ऐसे नेत्रादि हैं यो उसका स्वरूप लक्षण है और
जिसके बाहर कुंवा ऐसी उसकी हवेली ऐसे वस्त्र पहर
रहा है यो उसका तटस्थ लक्षण है तत्पद का अर्थ दो।
प्रकार का है वाच्य १ लक्ष्य २ मायोपहित जो चैतन्य
सो तत्पद का वाच्यार्थ है मायोपहित का अर्थ यो है।
माया उपहित यों दो पद हैं यो दोनों मिलके व्याकरण
की रीति से मायोपहित यो एक शब्द बोला जाता है।
मायोपहित अर्थात माया करके युक्त जैसे बिम्ब घट।
गत जल करके युक्त अथवा जैसे स्फटिक लाल रंग की
सन्निधी से लालही प्रतीत होता है ऐसेही शुद्ध ब्रह्म मा-
या की सन्निधी से ईश्वर प्रतीत होते हैं जैसे स्फटिक।

लाल रंग करके उपहित लाल स्फटिक कहा जाता है।
और बिम्ब घट गत जल करके उपहित प्रतिबिम्ब कहा
जाताहै ऐसेही मायोपहित शुद्ध चैतन्य जगत्कारण।
ईश्वर कहे जाते हैं उपहित का अर्थ यहां भले प्रकार।
याद करलेना भले प्रकार बुद्धि में निश्चय करलेना आगे
बहुत जगे काम पड़ेगा प्रसंग योथा मायोपहित चैतन्य
तत्पद का वाच्यार्थ और माया से युक्त चैतन्य तत्पद का
लक्ष्यार्थ है जैसे प्रतिबिम्ब से बिम्ब नित्य मुक्त है और
शुक्ति भ्रान्ति काल में भी रजत नहीं हुई और जैसे स्फटिक
लालरंग की सन्निधिकाल में भी श्वेतही रहताहै ऐसे-
ही शुद्ध ब्रह्म मायोपहित और अविद्योपहित काल में भी॥
टी॰। अविद्या उपहित ये दोनों पद मिलकर व्याकरण
की रीति से एक अविद्योपहित बोला जाता है अर्थ यो
हुआ अविद्या करके उपहित ॥
मू॰। चैतन्य असंग शुद्धही है माया किसकूं कहते हैं।
सुनो जैसे शुक्ति में रजत की भ्रान्ति ऐसे चैतन्य में कारण
सूक्ष्म स्थूल प्रपञ्च जड़ की जो भ्रान्ति इसी का नाम माया
है यो सब ब्रह्म है १ यो सब बासुदेव हैं २ ऐसी ऐसी अर्थ
वाली बहुत श्रुति स्मृति चैतन्य का भाव और जड़ का।
अभाव कहती हैं चैतन्य पदार्थ क्या है सुनो सत्। चित्।
आनन्द। शुद्ध। बुद्ध। एक। स्वयंप्रकाश। अनन्त। नित्यमुक्त

शान्त। अखंड। अज। अमर। परिपूर्ण। निरंजन। निरवयव। असंग। अद्वय। अव्यक्त। अचिन्त्य। सर्वगत। अचल। सनातन। नित्य। आत्मा। परमात्मा। परमेश्वर। ब्रह्म। प्रत्यगात्मा। ये चैतन्य पदार्थ के विशेषण हैं और भी चितिज्ञान स्वरूपादि विशेषण हैं और जड़ अज्ञान से आदि लेकर जो स्थूल पर्यन्त हैं सो सब जड़ हैं अज्ञान कूं प्रकृति और गुणों की साम्याऽवस्था और मूल अज्ञान भी कहते हैं सो अज्ञान सत्व, रज, तम, इन तीन गुणों वाला है स्वरूप उसका अनिर्वाच्य है सत असत् करके कुछ नहीं कहा जाता है जो सत कहें तो कुछ पदार्थ नहीं है और असत् कहें तो प्रतीत होता है जैसे भ्रान्ति समय शुक्ति में रस से अनिर्वाच्य है परन्तु ज्ञान से उस अज्ञान का अभाव होने से वो अज्ञान भावरूप है जैसे लौकिक व्यवहार में प्रथम कुछ भूल जावे फिर याद आजावे और जैसे बालक अवस्था में तूलाऽज्ञान का भाव होता है ॥

टी॰। तूलाऽज्ञान यो है जैसे किसी पदार्थ कूं भूल जावे उसमें जो कारण और बालक अवस्था में जो अज्ञान से तूलाऽज्ञान उसका न्याय शास्त्र और प्राकृत विद्या के पढ़ने से और लौकिक व्यवहार से नाश होजाता है और मूलाऽज्ञान का तो केवल ब्रह्म विद्या से नाश होता है ॥

मू॰। विद्या पढ़ कर के और व्यवहारादि से उस अज्ञान का

अभाव होजाता है ऐसे अज्ञान काल में कहताहै कि।
मैं ब्रह्मकूं नहीं जानता हूं ज्ञानकाल में कहताहै कि मैं
ब्रह्म कूं जान्ता हूं ऐसा ऐसा अनुभव व्यवहार होने से।
निःसन्देह प्रतीत होता है कि एक अज्ञान पदार्थ अनि-
र्वाच्य है भाव और अभाव उसके दोनों प्रतीत होते हैं।
अज्ञान १ माया अविद्या का भेद २ मायोपहित सबल
ब्रह्म ३ जीव ४ जीवईश्वर का भेद ५ शुद्ध ब्रह्म ६ ये।
सब अनादि हैं इनकूं यो नहीं कहा जाता है ये कबसे हैं
कबसे इनका भेद हुआ है और शुद्ध ब्रह्म कबसे मायोप-
हित अविद्योपहित हुए जैसे यो नहीं कहा जाता है श-
रीर प्रथम हुआ या कर्म दृष्टान्त यो है बीज प्रथम हुआ
या वृक्ष और जैसे स्वप्न में जो उपवन, मन्दिर, मृग, मित्र, शत्रु
आदि दीखते हैं विचारो कि उपवन मन्दिर की कौन से
सम्वत् मुहूर्त में नीव रक्खी गई है और मित्रादि का कौ-
न से सम्वत् महूर्त में जन्म हुआ है यो ही निश्चय करो।
जैसे दृष्टान्त के पदार्थों की व्यवस्था है वैसेही दार्ष्टान्त के
पदार्थों में शुद्ध ब्रह्म अनादि भी और अनित्य भी है और
सब अनित्य हैं ज्ञानकाल में शुद्ध ब्रह्म के बिना सबनष्ट
होजाते हैं वो अज्ञान माया अविद्या भेद से दो प्रकार का
है शुद्ध सत्व प्रधान हुआ माया मलिन सत्व प्रधान हुआ
अविद्या कहाजाता है रजोगुण तमोगुण करके जो।

सत्त्वगुण नहीं तिरोभाव होता है सो शुद्ध सत्व और रज
तमोगुण करके जो सत्त्वगुण तिरोभाव होजाता है सो
मलिन सत्त्व कहा जाता है माया अविद्या का भेद ऐसे
समझो जैसे एक पुरुष क्रिया के निमित्त से पाठक
याचक कहलाता है और जैसे एक स्त्री पिता की आपे-
क्षा करके कन्या पति की आपेक्षा करके पत्नी है ऐसे वो
अज्ञान ईश्वर की अपेक्षा करके माया और जीव की
अपेक्षा करके अविद्या कहा जाता है ऐसा भेद नहीं स-
मझना कि अज्ञान के दो टूक हो गये, अथवा उस अज्ञा-
न की शक्ति दो प्रकार की है ज्ञानशक्ति १ क्रियाशक्ति २
रजोगुण तमोगुण से नहीं दबा जो सत्यगुण सो ज्ञान
शक्ति १ क्रियाशक्ति दो प्रकार की है, आवरणशक्ति १
विक्षेपशक्ति २ रज सत्त्वगुण से नहीं दबा जो तमोगुण
सो आवरणशक्ति और तम सत्त्वगुण से नहीं दबा जो
रजोगुण सो विक्षेपशक्ति वोही अज्ञान आवरणशक्ति
प्रधान हुआ अविद्या और विक्षेपशक्ति और ज्ञानशक्ति
प्रधान हुआ माया मायोपहित चैतन्य ईश्वर कहा जाता
है वोही तत्पद का वाच्यार्थ है और वोही चैतन्य अवि-
द्योपहित जीव प्राज्ञ कहा जाता है मायोपहित ईश्वर
तो माया के बस नहीं हुए इसलिये सर्वज्ञ ईश्वरादि नाम
करके कहे गये और अविद्योपहित जीव अविद्या के

वश हो गया उस अविद्या की विचित्रता से नाना प्रकार का हो गया इसलिये अल्पज्ञ कहा गया जैसे कोई पुरुष शीशे के मकान में बैठा हुआ आपकूं और औरोंकूं भी देखता है मृत्तिका के मन्दिर में बैठा हुआ आपही कूं देखता है कभी बहुत अन्धेरे में अपना आपा भी नहीं देखता है माया में शुद्ध सत्त्व प्रधान होने से माया शीशे के मन्दिर की सदृश है और अविद्या में मलिन सत्त्व प्रधान होने से अविद्या मृत्तिका के मन्दिर के सदृश है माया में प्रतिबिम्ब जो चैतन्य का सो ईश्वर अविद्या में प्रतिबिम्ब जो उसी चैतन्य का सो जीव यहां बिम्ब प्रतिबिम्ब का भेद सूर्य बिम्ब और घट गत जल प्रतिबिम्बवत् नहीं समझना ऐसे समझना जैसे आकाश का प्रतिबिम्ब जल में प्रथम दृष्टान्त में भी कुछ दोष नहीं है परन्तु परिछिन्न भेद सा प्रतीत होता है सो कुछ दोष नहीं है दृष्टान्त एक देश में होता है आकाश के दृष्टान्त से बिम्ब का भेद और परिछिन्नता नहीं प्रतीत होती है इस पक्ष में जीव एकही है परन्तु अन्तःकरण की उपाधी से बहुत प्रमाता कल्पते हैं अन्तःकरण विशिष्ट चैतन्य कूं प्रमाता कहते हैं कोई ऐसा कहते हैं अनेक अज्ञान हैं वनवत जो अज्ञानोंका समुदाय सो समष्टि और वृक्षवत् जो एक अज्ञान सो व्यष्टि वोही

चैतन्य । अज्ञान । समष्टि । करके उपहित ईश्वर और
वोही चैतन्य व्यष्टि अज्ञान करके उपहित जीव कोई
ऐसा कहते हैं कारण भूत जो अज्ञान उससे उपहित
चैतन्य ईश्वर और अन्तःकरण करके उपहित वेही।
चैतन्य जीव तात्पर्य्य कारण उपाधी वाले ईश्वर और।
कार्य्य उपाधी वाला जीव सबका सिद्धान्त योहै मायोप-
हित चैतन्य ईश्वर। अविद्योपहित चैतन्य जीव सो ईश्वर।
ज्ञानशक्ति करके उपहित जगत के निमित्त कारण वि-
क्षेपशक्ति करके उपहित उपादान कारण जैसे मकड़ी
जालके प्रति चैतन्य प्रधानता करके तो निमित्त कारण
और शरीर प्रधानता करके उपादान कारण यो मकड़ी
का दृष्टान्त श्रुति ने कहा है कि जिस प्रकार मकड़ी।
जालकूं रचती है फिर अपने में लय करलेती है तात्पर्य
परमेश्वर जगत के कर्त्ता अभिन्न निमित्तोपादान कारण
हैं अर्थात नहीं हैं भिन्न निमित्त और उपादान कारण।
जिन्हों से सो अभिन्न निमित्तोपादान कारण इस प्रकार
जगत के कारण ईश्वर हैं ऐसे नहीं है जैसे घट के बनाने
में कुलाल भिन्न निमित्तोपादान कारण है अर्थात भिन्न
हैं निमित्त और उपादान कार जिससे सो भिन्न निमित्तो-
पादान कारण कुलाल तात्पर्य घट के बनाने में मृत्तिका
उपादान और कुलालदण्ड चक्रादि निमित्त है ईश्वर तो।

आपही उपादान और आपही निमित्त कारण है पूर्वरीति से भले प्रकार विचारना योग्य है निरीश्वरवादी पूर्वमीमांसकादि कूं जो यो तर्क जगत के मोह के लिये वाचाल करावे हैं उस तर्क कूं सुनो वो लोग यो कहते हैं ईश्वर जो त्रिभुवन कूं रचते हैं सो त्रिभुवन के रचने में क्या क्या चेष्टा करते हैं और रचने के समय किस प्रकार की काया है जिनकी अर्थात किस रूप हुए हुए और क्या है उपाय और आधार जिनका और क्या उपादान है यो तर्क उनकी अतर्क्य ईश्वर के विषय दुर्बल है परमेश्वर की रचना में तर्क का अवसर नहीं क्योंकि परमेश्वर की माया नहीं घटने के योग पदार्थ कूं घटा सक्ती है और मनुष्य की रचना इन्द्रजालादि में बुद्धि काम नहीं करती है परमेश्वर की रचना में तो नष्ट बुद्धि तर्क करते हैं तोभी उस तर्क के खण्डन के लिये कहा है जो ऊपर अभिन्न निमित्तोपादान कारण प्रकार वो वज्र उनके मुख में मारना योग्य है

इस रीति से जगत का कर्त्ता ईश्वर कूं सिद्ध किया। और कारण प्रपञ्च का यहां तक निरूपण किया जगत में तीन प्रपंच हैं कारण १ सूक्ष्म २ स्थूल ३ अब सूक्ष्म प्रपंच का निरूपण करते हैं पूर्व सिद्धि किये हुए जो। मायोपहित चैतन्य ईश्वर उनसे प्रथम महत तत्त्व अहंकार की सूक्ष्म अवस्था फिर महत तत्त्व से अहंकार।

अर्थात् मैं एक हूं बहुत हो जाऊं फिर अहंकार से आकाश आकाश से वायु वायु से तेज तेज से जल जल से पृथिवी अर्थ इन सबका ऐसा करना महत्तत्व करके उपहित जो ईश्वर उनसे अहंकार हुआ तात्पर्य यो है महत्तत्वादि सब जड़ पदार्थ हैं बिना चैतन्य रचना नहीं हो सक्ती है, निश्चय इसी आत्मा से आकाश हुआ है यो श्रुति का अर्थ है, माया कूं तीन गुणोंवाली होने से कार्य्य भी उसका आकाशादि पंच तीन गुणों वाले हैं उनकूं अपंची कृत सूक्ष्म भूत और तन्मात्रा भी कहते हैं इन्हीं सूक्ष्म भूतों से पंची कृत स्थूल भूत उत्पन्न हुए हैं और सूक्ष्म शरीर १७ लिंगवाला उत्पन्न हुवा १७ लिंग ये हैं॥

टी०। सूक्ष्म शरीर कूं कोई १६ लिंग कोई १७ कोई १९ लिंग वाला कहते हैं लिंगहीं कूं तत्व कहते हैं, इंद्रिय दश प्राण पंच अतःकरण एक इस प्रकार १६ और इंद्रिय प्राण १५ मनबुद्धि २ इस प्रकार १७ और इंद्रिय प्राण १५ मन बुद्धि चित्त अहंकार ४ इस प्रकार १९ परंतु बहुत १७ तत्ववाला कहते हैं॥

मू०। शब्दादि का ज्ञान होता है जिन इन्द्रियों से सो ज्ञानेन्द्रिय पंच और कर्म किया जाता है जिन इन्द्रियों से सो कर्मेन्द्रिय पंच प्राणादि पंच मन बुद्धि २ आकाशादि के सत्त्वगुण के अंश से पृथक् पृथक् पंच ज्ञानेन्द्रिय हुए सोई लिखते हैं आकाश से श्रोत्र वायु से त्वक् तेज से

चक्षु जल से रसना पृथिवी से घ्राण और आकाशादि के
मिले हुए सत्त्वगुण के अंश से अन्तःकरण सो वृत्ति
भेद से चार प्रकार का है संकल्प विकल्प वाला मन
निश्चयवाली बुद्धि अभिमान वाला अहंकार अनुसंधा
न वाला चित्त और आकाशादि के रजोगुण के अंश से
पृथक् पृथक् पंच कर्मेन्द्रिय हुए हैं आकाश से वाक्
वायु से पाणि तेज से पाद जल से उपस्थ पृथिवी से वायु
और आकाशादि के मिले हुए रजोगुण के अंश से प्राण
सो वृत्ति भेद से पांच प्रकार का है, बाहर कूं निकलने
वाला नासिका मुख में रहनेवाला प्राण १ नीचे कूं
जानेवाला वायु आदि में रहनेवाला अपान २ सब
शरीर में फिरनेवाला सब शरीर में रहनेवाला व्यान ३
खाये पिये कूं सब नाड़ियों में पहुंचानेवाला सारे शरीर
में रहनेवाला समान ४ ऊपर कूं जानेवाला कण्ठ में
रहनेवाला उदान ५ और पंच उप प्राण हैं उनका भी
इन्हीं पांच में अंतर्भाव है, उद्गार में जो हेतु सो नाग १
नेत्रों के खोलने मीचने में जो हेतु सो कूर्म २ भूक का
जो हेतु सो कृकरः ३ जम्भाई लेने में जो हेतु सो देवदत्त ४
सब अंगे रहनेवाला धनंजय जो मुरदे कूं फुला देता है
आकाश से दो इन्द्रिय श्रोत्र और वाक् हेतु यों है श्रोत्र
करके जो आकाश का शब्द गुण सो ग्रहण किया जाता

है और वाक् से बोला जाता है वायु से दो इन्द्रिय त्वक्
और पाणि हेतु यो है त्वक् करके तो वायु का जो स्पर्श
गुण उसका ज्ञान होता है और पाणि से त्वक् की रक्षा
होती है तेज से दो इन्द्रिय चक्षु और पाद हेतु यो है चक्षु
करके तो तेज का जो गुण रूप उसका ज्ञान होता है और
पैर के मलने से चक्षु की गरमी दूर होती है जल से दो इन्द्रि-
य रसना उपस्थ हेतु यो है रसना करके तो जल का जो।
गुण रस उसका ज्ञान होता है और तरह रहता है और।
उपस्थ करके जल का त्याग होता है पृथिवी से दो इन्द्रि-
य घ्राण और वायु हेतु यो है घ्राण करके तो पृथिवी का
जो गुण गंध उसका ग्रहण होता है और वायु से गंध का
त्याग होता है, और अन्तः करण समष्टि पांचों भूतों के
सत्वगुण के अंश से उत्पन्न हुआ है हेतु यो है पांचों ज्ञाने-
न्द्रियों के विषयों कूं अनुभव करता है, अन्नमय, प्राणमय,
मनोमय, विज्ञानमय, आनन्दमय, ये पंचकोश कारण
सूक्ष्म स्थूल शरीरों के अन्तर्भाव हैं आगे जो कहेंगे स्थूल
शरीर सो तो अन्नमय कोश हैं सूक्ष्म शरीर में तीन कोश हैं
पंच कर्मेन्द्रिय करके सहित जो पंच प्राण सो प्राणमय।
कोश और पंच ज्ञानेन्द्रिय करके सहित जो मन सो मनोम-
य कोश और पंच ज्ञानेन्द्रिय करके सहित जो बुद्धि सो।
विज्ञानमय कोश है मनोमय विज्ञानमय कोश में यो भेद

है मनोमय कोश तो करण और विज्ञानमय कोश कर्त्ता है क्रिया में कर्त्तादि ये षट् कारक होते हैं। कर्त्ता कर्म च करणं च सम्प्रदानं तथैव च अपादानाधिकरणमित्या हुः कारकाणि षट्॥ और कारण शरीर में कारण शरीर भूत अविद्या में जो मलिन सत्त्व सो प्रियमोद प्रमोद। वृत्ति करके सहित आनन्दमय कोश है कोई अज्ञान कूं आनन्दमय कोश कहते हैं जो वस्तु प्राप्त न हो और उसकी प्रतीत हो उस समय की वृत्ति कूं प्रिय कहते हैं १ फिर। ओही वस्तु जब अपनी होजावे उस समय में जो आनन्द सो मोद २ उसके भोगने में जो आनन्द वो प्रमोद ३ यो। सूक्ष्म शरीर समष्टि व्यष्टि भेद से दो प्रकार का है वनवत्। सूक्ष्म शरीरों का समुदाय समष्टि वृक्षवत् पृथक् पृथक् एक एक सूक्ष्म शरीर व्यष्टि जैसे उपवन समष्टि और उसी उपवन का एक एक वृक्ष व्यष्टि सूक्ष्म समष्टि करके उप- हित वोही मायोपहित चैतन्य हिरण्यगर्भ कहा जाता है और सूक्ष्म व्यष्टि करके उपहित वोही अविद्योपहित चैतन्य तैजस कहा जाता है समष्टि व्यष्टि कूं तादात्म्य होने से उन करके उपहित हिरण्यगर्भ तैजस की भी तादात्म्य- ता है जैसे वन और वृक्ष करके उपहित आकाश में कुछ। भेद नहीं ऐसे हिरण्यगर्भ तैजस में भेद नहीं और भी दृष्टा- न्त हैं जाति व्यक्ति सामान्य विशेष नगर महल्ला इनका

विना विचार के भेद है वास्तव भेद नहीं, यो सूक्ष्म शरीर अविद्या काम कर्म करके सहित पुर्यष्टक कहाता है सोई लिखते हैं, ज्ञानेन्द्रिय पंच १ कर्मेन्द्रिय पंच २ चार अन्तःकरण ३ पंच प्राण ४ पंच सूक्ष्म भूत ५ अविद्या ६ काम ७ कर्म ८ अविद्या का कार्य चार प्रकार का है ब्रह्मलोक पर्यन्त जो पदार्थ हैं उनमें नित्य बुद्धि होनी १ दुःखों में और दुःखों के साधनों में जो सुख बुद्धि २ देहादि अनात्मा पदार्थों में आत्म बुद्धि ३ अपवित्र जो अपने और पुत्रादि के शरीर उनमें पवित्र बुद्धि ४ काम राग कूं कहते हैं कर्म तीन प्रकार का है सञ्चित १ आगामी २ प्रारब्ध ३ अपना किया हुवा कर्म फल कूं नहीं देकर जो अदृष्ट रूप करके ठहर रहा है सो सञ्चित १ इस शरीर में जो किया जाता है सो आगामी २ स्थूल शरीर के जन्म स्थिति का जो हेतु सो प्रारब्ध ३ सञ्चित आगामी कर्मों के फल का भोग करके वा उसका विरोधि कर्म करके वा ब्रह्मज्ञान करके नाश हो जाता है ॥

और प्रारब्ध कर्म का भोगने से नाश होता है प्रारब्ध से पृथक् अविद्यादि पंच क्लेश हैं उनका ब्रह्मज्ञान से नाश होता है अविद्या १ अस्मित्ता २ राग ३ द्वेष ४ अभिनिवेश ५ कारण कार्य करके अविद्या तो दो प्रकार की ऊपर लिख आये हैं अहंकार की सूक्ष्म अवस्था कूं

अस्मिता और महत्तत्त्व और सामान्य अहंकार भी क-
हते हैं राग काम कूं कहते हैं द्वेष क्रोध कूं कहते हैं।
अपने आप ग्रहण करके फिर उसके त्याग कूं न सहना
इसकूं अभिनिवेश कहते हैं ब्रह्म कूं जान करके सारे।
क्लेशों से छूट जाता है या श्रुति का अर्थ है यहां तक।
सूक्ष्म शरीर की उत्पत्ति लिखी अब स्थूल शरीर की।
उत्पत्ति लिखते हैं, पंचीकृत पंच स्थूल भूत हैं आका-
शादि के तामस अंश कूं लेकर अर्थात् बुद्धि में कल्पना
करके प्रथम एक एक के दो दो टूक करे दो में से एक कूं
पृथक् रक्खे उस दूसरे के चार चार भाग करे फिर उन।
चारों भागों कूं अपने अपने भाग कूं छोड़कर औरों में
मिला देना यो पंचीकरण कहलाता है जिसका भाग
जिसमें सिवाय है वोही कहने में आता है जैसे मनुष्य
शरीर कूं पार्थिव कहते हैं, पंचीकृत स्थूल भूतों का जो
रचा हुआ स्थूल शरीर उसमें पंचीकृत स्थूल भूत हैं।
और अपंचीकृत भूतों के तामस अंश का कार्य इस।
प्रकार है, पंचीकृत जो पृथिवी उसकी पृथिवी का
कार्य अस्थि क्योंकि कठिन है जल का कार्य मांस कुतः
बह जाता है और शिथिल है तेज का कार्य नाड़ी कुतः
ज्वर की परीक्षा करती है वायु का कार्य त्वक् कुतः स्पर्श
करती है आकाश का कार्य रोम कुतः काटने से दुःख

नहीं होता है पंचीकृत जो जल उसकी पृथिवी का कार्य शोणित कुतः पृथिवी की सदृश रक्त है जल का कार्य्य शुक्र कुतः श्वेत है और उससे गर्भ होता है जैसे जल से सब वस्तु की उत्पत्ति है तेज का कार्य मूत्र कुतः उष्ण है वायु का कार्य स्वेद कुतः बहुत दम चलने से आजाता है और वायु से सूख जाता है आकाश का कार्य राल कुतः ऊपर कूं जाती है और आकाश भी ऊंचा है और पंचीकृत जो तेज उसकी पृथिवी का कार्य आलस्य कुतः आलस्य में जड़ता है जल का कार्य कान्ति कुतः जल के स्पर्श स्नानादि से सुन्दरता होती है तेज का कार्य क्षुधा कुतः अन्न कूं पचाती है वायु का कार्य तृषा कुतः ओष्ठ कंठ सूख जाता है आकाश का कार्य निद्रा कुतः निद्रा में निर्विकल्प होजाता है और पंचीकृत जो वायु उसकी पृथिवी का कार्य संकोचन कुतः जिस समय मनुष्य सुकड़ कर बैठे तो भारी और जड़ सा होजाती है जल का कार्य चलना कुतः जल भी चलता है तेज का कार्य उडना उछलना कुतः उडने उछलने में ऊंचा होता है और अग्नि भी ऊपर कूं जाती है वायु का कार्य दौड़ना कुतः दौड़ने में बल होता है और वायु में भी बल और वेग है आकाश का कार्य पसारना कुतः आकाश भी व्यापक है और पसारने से भी व्यापक होता है अर्थात् फैलता है और पंचीकृत जो आकाश उसकी पृथिवी का कार्य काम नहीं

मल रहता है कुतः गंध स्थान है जलका कार्य उदर कुतः जल का स्थान है तेजका कार्य हृदय कुतः उष्मा रहता है वायु का कार्य कंठ कुतः वायु का स्थान है आकाश का कार्य शिर कुतः शब्द स्थान है और अनहद शब्द होता रहता है और पंचीकृत आकाश का भेद दूसरे प्रकार ऐसे हैं उसकी पृथिवी का कार्य भय कुतः भय से अन्तःकरण में तम प्रधान होजाता है और तम पृथिवी का भाग है जल का कार्य मोह कुतः जलके स्पर्श से उत्पन्न होती है जो सुंदरता उसकूं देखकर मोह होती है तेज का कार्य क्रोध कुतः क्रोध के समय हृदय भस्म होता है वायुका कार्य कामकुतः वायु भी चंचल है और काम भी चंचल है आकाश का कार्य लोभ कुतः आकाश की भी अवधि नहीं लोभकी भी अवधि नहीं ॥

	पृथिवी	जल	तेज	वायु	आकाश
पृथिवी	अस्थि	मांस	नाड़ी	त्वचा	रोम
जल	रक्त	वीर्य	मूत्र	स्वेद	राल
तेज	आलस्य	क्रान्ति	भूक	प्यास	निद्रा
वायु	संकोचन	चलना	उठना उछलना	दौड़ना	फहलाना
आकाश	कमर में	पेट में	हृदय में	कंठ में	शिर में
दूसरी प्रकार आकाश	भय	मोह	क्रोध	काम	लोभ

शब्द गुण जिसमें रहता है सो आकाश सावकाश रूप। रूप रहित स्पर्शवाला वायु गर्म स्पर्शवाला तेज सो चार प्रकार का है अग्नि आदि स्वर्णादि विद्युदाऽऽदि जाठराग्नि शीत स्पर्शवाला जल गंधवाली पृथिवी पंच भूतों के जो लक्षण कहे हैं सो तीनों दोषों से रहित हैं जिस लक्षण में अव्याप्ति अति व्याप्ति असम्भव ये तीन दोष पाये जावें वो प्रमाण नहीं जैसे किसी ने कहा गो कपिला होती है इसमें अव्याप्ति दोष है कुतः बहुत गो कपिला नहीं होतीं फिर। कहा सींगवाली गो होती है इस में अतिव्याप्ति दोष है। क्योंकि सींग हिरन आदि के भी होते हैं फिर किसी ने कहा एक खुरवाली गो होती है इस में असम्भव दोष है कुतः। यह लक्षण गो में सम्भव नहीं होसक्ता वो लक्षण प्रमाण है जो सब दोष से रहित हो जैसे गो का लक्षण सींग सास्ना आदि वाली गो विचारो इस में कोई दोष नहीं, आकाश में एक गुण शब्द वायु में दो शब्द स्पर्श तेज में तीन शब्द। स्पर्श रूप जल में चार शब्द स्पर्श रूप रस पृथिवी में पांच शब्द स्पर्श रूप रस गंध पंची कृत पृथिवी आदि से ब्रह्माण्ड हुआ ब्रह्मांड में चौदह लोक भूः भुवः स्वः। महः जन। तप। सत्य। ये सात ऊपर ऊपर के लोक हैं और तल। वितल। सुतल। तलातल। महातल। रसातल। पाताल। ये सात नीचे नीचे के लोक हैं ब्रह्माण्ड में मनु और शतरूपा हुए ब्रह्मांड

में जो पृथिवी उससे औषधि हुई औषधि से अन्न माता पिता के खाये हुए का परिणाम जो शोणित उनसे स्थूल शरीर उत्पन्न हुआ शरीर चार प्रकार के हैं मनुष्यादि के शरीर जरायुज अर्थात् जरस से उत्पन्न हुए पक्षी नागादि के शरीर अण्डज अर्थात् अण्डे से उत्पन्न हुए लीख जूं आदि के शरीर स्वेदज अर्थात् पसीने से उत्पन्न हुए तृण वृक्षादि उद्भिज पृथिवी कूं भेदन करके उत्पन्न हुए और सनक सनन्दनादि शरीर इन चारों से पृथक् हैं वे मानवी सृष्टि में हैं सुना जाता है ये ब्रह्मा जी के मन से उत्पन्न हुए हैं यह स्थूल शरीर समष्टि व्यष्टि भेदकरके दो प्रकार का है पंचीकृत पंच महाभूत और उनका कार्य ब्रह्माण्ड और ब्रह्माण्ड के भीतर जो पंचभूतों का कार्य स्थूल शरीरादि का समुदाय यह सब समष्टि और पृथक् पृथक् स्थूल शरीर व्यष्टि इस स्थूल समष्टि करके उपहित वही मायोपहित चैतन्य विराट कहा जाता है और स्थूल व्यष्टि करके उपहित वोही अविद्योपहित चैतन्य विश्व कहा जाता है समष्टि व्यष्टि कूं जाति व्यक्ति सामान्य विशेष वन वृक्षवत् तादात्म्य होने से उन करके उपहित विराट विश्व की भी एकता है, इस जीव की प्रसिद्ध तीन अवस्था हैं प्रसिद्ध लिखने से यह अभिप्राय है कोई मरण और मूर्छा ये दो अवस्था और भी कहते हैं परन्तु प्रसिद्ध तीन अवस्था हैं जाग्रत स्वप्न

सुषुप्ति जाग्रत् का अर्थ जानने के लिये प्रथम इंद्रिय और
अन्तःकरण और शब्दादि विषय और बोलना ऽदि क्रिया
और संकल्पादि अन्तःकरण के धर्म और दिक् आदि देव-
ताओं के सहित सबकूं पृथक् पृथक् लिखते हैं यह सं-
केत याद रखना चाहिये एक का अंक जिसके आगे उस
कूं इन्द्रिय वा अन्तःकरण जानना इसी कूं अध्यात्म कहते
हैं और दो का अंक जिसके आगे उसकूं ज्ञानेन्द्रिय का ।
विषय वा कर्मेन्द्रिय की क्रिया वा अन्तःकरण का धर्म
जानना इसी कूं अधिभूत कहते हैं और तीन का अंक जिस
के आगे उसकूं देवता जानना इसी कूं अधिदैव कहते हैं ।
जिस इन्द्रिय और मनादि के आगे विषय क्रिया धर्म देवता
लिखे हैं उसी उस इन्द्रिय मनादि के विषय क्रिया धर्म ।
देवता हैं शब्दादि पांच कूं विषय और बोलनादि पांच कूं
क्रिया और संकल्पादि चार कूं धर्म बोलते हैं श्रोत्रा ऽदि
इंद्रिय सूक्ष्म हैं कान नासिकादि जो स्थूल शरीर में दीखते
हैं ये उनका आश्रय है अर्थात् उनमें रहते हैं बहुत करके तो
बहिर्मुख हैं कभी भीतर का भी कुछ ज्ञान हो जाता है, श्रोत्र
कान में रहता है बहुत करके तो बाहर के शब्द कूं सुनता है ।
कभी कान बंद करने से कुछ शब्द भीतर का भी सुना जाता है
श्रोत्र करके सुना जाता है जो शब्द सो दो प्रकार का है एक
वक्तादि का दूसरा भेरी आदि का सो पांचों भूतों में रहता है २

दिक् ३ त्वक् सारे शरीर में रहता है बहुत करके तो बाहर के शीत को मलादि कूं विषय करता है कभी उष्णादि वस्तु के खाने से भीतर के स्पर्श का ज्ञान होता है १ त्वक् करके जो स्पर्श किया जाता है सो स्पर्श पांच प्रकार का है शीत गर्म न शीत न गर्म कठिन कोमल शीत स्पर्श जल में गर्म स्पर्श तेज में न शीत न गर्म पृथिवी वायु में कठिन कोमल पृथिवी में और पृथिवी के कार्य वस्त्रादि में रहता है २ वायु ३ चक्षु नेत्रों में कृष्ण तारे के अग्र भाग में रहता है बहुत करके तो बाहर के रक्त पीतादि रूप कूं देखता है कभी नेत्र के मीचने में भीतर का भी तम प्रतीत होता है १ चक्षु करके जो रूप देखने में आता है सो सात प्रकार का है शुक्ल,नील, पीत,रक्त,हरित,कपिश,चित्र,भेद करके सो पृथिवी में तो सात प्रकार का और जल में अभास्वर शुक्ल और तेज में भास्वर शुक्ल रहता है २ सूर्य ३ रसना जीभ के अग्र भाग में रहता है बहुत करके तो बाहर के मधुरादि रस अनुभव करता है कभी डकार आने से भीतर के रस का भी ज्ञान हो जाता है १ रसना करके जो रस का अनुभव होता है सो ६ प्रकार का है मधुर,अम्ल,लवण,कटु,कषाय,तिक्त भेद करके सो पृथिवी में तो ६ प्रकार का और जल में केवल मधुर रहता है २ वरुण ३ घ्राण नाक के दो स्वर उनके अग्र भाग में दोनों के बीच में रहता है बहुत करके तो बाहर के गंध कूं

ग्रहण करता है कभी इकार आने से भीतर के गन्ध का भी ज्ञान होजाता है १ घ्राण करके जो गन्ध का ग्रहण किया जाता है सो दो प्रकार का है सुगन्ध दुरगन्ध सो पृथिवी में रहता है २ पृथिवी ३ यहां तक ज्ञानेन्द्रियों का निरूपण किया, वाक् जीभ में रहता है १ बोलन २ अग्नि ३ पाणि हाथों में रहता है १ लेना देना २ इन्द्र ३ पाद चरणों में रहता है १ चलना फिरना २ बिस्नु ३ उपस्थ मूत्र करने का जो शरीर में चिन्ह उसमें रहता है १ मैथुन मूत्र त्याग २ प्रजापति ३ वायु मल त्याग करने का जो शरीर में चिन्ह उसमें रहता है १ मल का त्याग करना २ मृत्यु ३ यहां तक कर्मेन्द्रियों का निरूपण किया, अन्तःकरण हृदय गोलक में रहता है सो वृत्ति भेद करके चार प्रकार का है मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, मन १ संकल्प विकल्प मनोराज्यादि २ चन्द्र ३ बुद्धि १ पदार्थों का निश्चय करना २ बृहस्पति ३ चित्त १ चिन्तवन करना २ क्षेत्रज्ञ ३ अहंकार १ यो मैंने किया यो मेरे करने के योग्य है २ रुद्र ३, अमान, अदम्भ, अहिंसा, क्षमा, आर्जव, वैराग्य, शम, दम, मुक्ति की इच्छा, संतोष, औदार्यादि ऐसी ऐसी और भी अन्तःकरण की सत्त्वगुणी वृत्ती हैं और दम्भ लोभ अहंकार अशम भोगों की इच्छा चपलता अभिमान रागादि ऐसी ऐसी और भी बहुत अन्तःकरण की रजोगुणी वृत्ति हैं और निद्रा

आलस्य प्रमाद मोहादि अन्तःकरण की तमोगुणी हैं अर्थात यो सब अन्तःकरण का धर्म है जो संकल्प विकल्प वाली वृत्ति सो मन की और निश्चय वाली बुद्धि की और अनुसन्धान वाली चित्त की और अभिमान वाली अहंकार की वृत्ति, सत्त्व गुणी वृत्ति से पुराय की उत्पत्ति होती है रजोगुणी वृत्ति से पाप की उत्पत्ति होती है तमोगुणी वृत्ति से मूर्खता बढ़ती है वृथा अवस्था व्यतीत होती है उस से न कुछ इस लोक में प्राप्ति न कुछ परलोक में प्राप्ति है पीछे तमोगुणी वृत्ति बहुत दुःख की हेतु है ❖ श्री श्री श्री श्री

भूत	ज्ञानेंद्रिय	विषय	ज्ञानेंद्रियों के देवता	कर्मेंद्रिय	क्रिया	कर्मेन्दियों के देवता
आकाश	श्रोत्र	शब्द	दिक्	वाक्	बोलना	अग्नि
वायु	त्वक्	स्पर्श	वायु	पाणि	लेनादेना	इन्द्र
तेज	चक्षु	रूप	सूर्य्य	पद	चलना	विष्णु
जल	रसना	रस	वरुण	उपस्थ	मैथुनादि	प्रजापति
पृथ्वी	घ्राण	गंध	पृथ्वी	गुदा	मलत्याग	मृत्यु

श्रोत्रादि इन्द्रियों के जो देवतादिक आदि
उन करके युक्त श्रोत्रादि करके जो अपने अपने विषयो

का अनुभव होना सो जाग्रत् अवस्था यो जो जाग्रत अव-
स्था और यो स्थूल शरीर मन इन्द्रियादि का आश्रय इन
दोनों का जो अभिमानी जीव सो विश्व कहा जाता है।
प्रथम भी विश्व विराट् की एकता लिख आए हैं इसलिये
भेद की निवृत्ति के लिये विश्व कूं विराट् रूप करके देखे१
जाग्रत अवस्था में जो भोग देनेवाले कर्म उनका उपराम
हुए सन्ते और बाहर श्रोत्रादि इन्द्रियों का उपराम हुए
सन्ते जाग्रत् अवस्था में जो देखा और सुना उनहीं संस्कार
करके केवल अन्तःकरण करके जो निद्रा में प्रपंच की।
प्रतीत सोई स्वप्न अवस्था वोही जाग्रत अवस्था का अ-
भिमानी जो विश्व सोई स्वप्न अवस्था और सूक्ष्म शरीर
का अभिमानी हुआ तैजस कहा जाता है तैजस हिरण्य
गर्भ की एकता है तैजस कूं हिरण्यगर्भ रूप करके देखे २
जाग्रत स्वप्न में जो भोग देनेवाले कर्म उनका उपराम।
हुए सन्ते स्थूल सूक्ष्म शरीरों का जो अभिमान उसके।
निवृत्ति होने से बुद्धि का कारणात्मा में जो स्थिति होना
सो सुषुप्ति अवस्था में ने न कुछ जाना सुख करके मैंने।
निद्रा का अनुभव किया जो जाग्रत अवस्था में जिस।
अवस्था की व्यवस्था कहता है वोही सुषुप्ति है तात्पर्य
जिस अवस्था में बुद्ध्यादि सब लय होजाते हैं वोही सुषु-
प्ति है वोही स्वप्न अवस्था का अभिमानी जो तैजस जो यों

सोई सुषुप्ति अवस्था और कारण शरीर का अभिमानी हुआ प्राज्ञ कहा जाता है प्राज्ञ ईश्वर की संज्ञा है प्राज्ञ कूं ईश्वर रूप करके देखे योही प्राज्ञ तीनों शरीर और तीनों अवस्था का अभिमान छोड़कर शुद्ध परमात्मा होजाता है जो यो उपासना करे मैं विराट् वा हिरण्य गर्भ वा ईश्वर वा शुद्ध ब्रह्म हूं इस उपासना करके वैसाही वैसा फल होता है अर्थात् विराट् आदि की उपासना करने से विराट् आदि होजाता है ऐसी ऐसी उपासना उपनिषद आदि में भले प्रकार फल के सहित लिखी हैं और भी अगाव आदि उपासना हैं शुद्ध ब्रह्म से लेकर पाषाण आदि मूर्त्ति पर्यन्त उपासना हैं जैसी अपनी सामर्थ्य जाने भेद उपासना वा अभेद उपासना वेद शास्त्रों में से निश्चय करके करे परमेश्वर की जैसी उपासना करेगा वैसाही वैसा फल होवेगा मुख्य अभेद उपासना शुद्ध ब्रह्म की है और ईश्वर हिरण्य गर्भ विराट की अभेद उपासना और विष्णु शिवादि राम कृष्णादि की भेद उपासना और नमोच्चारणादि पाषाणादिमूर्त्तियों की अर्चनादि ये सब उपासना उत्तरोत्तर गौण हैं जो अभेद उपासना शुद्ध ब्रह्म की न हो सके तो भेद उपासना श्री कृष्णचन्द्र महाराजादि की करने से ज्ञान द्वारा मुक्ति में सन्देह नहीं है जैसे कोई सिंह किसी पुरुष की छाया कूं देखकर दौड़ा उस छाया से पुरुष की प्राप्ति

होगई इसी प्रकार मीरा प्रभा से आदि लेकर और भी बहुत दृष्टान्त हैं, अष्टावक्र जी का यो वाक्य है कि जिस की जो मति है उसकी वैसेही गति होगी अर्थात दासो ऽहम जिस की मति है वो दासही है और ब्रह्मा हमास्मि, यो जिस की मति है वो ब्रह्म ही है ब्रह्म विद्ब्रह्मैव भवति, इस श्रुति से इस प्रकार मायोपहित ब्रह्म का तटस्थ लक्षण निरूपण किया इसी कूं अध्यारोप कहते हैं अब इसका अपवाद लिखते हैं अधिष्ठान में भ्रन्ता करके ॥

टी॰। जिसमें जो वस्तु काल्पित हो जैसे रज्जु में सर्प ॥

मू॰। जो प्रतीत होना उस भ्रान्ति कूं अधिष्ठान से व्यतिरेक करके भ्रान्ती का अभाव निश्चय करना जैसे शुक्ति में रजत की भ्रान्ति प्रतीत होती है शुक्ति का रजत से व्यतिरेक करके यो रजत नहीं है शुक्ति है यो जो रजत का अभाव निश्चय करना इसी कूं अपवाद वाध विलापन भी कहते हैं सो वाध तीन प्रकार का है शास्त्र करके युक्ति करके प्रत्यक्ष करके वेद कहते हैं यो स्थूल सूक्ष्म प्रपंच नहीं है इस जगत् भ्रान्ति रूप में ब्रह्म से पृथक् कुछ नहीं है एक शुद्ध ब्रह्म है इस प्रकार शास्त्र करके प्रपंच में ब्रह्म का व्यतिरेक करके प्रपंच का अभाव निश्चय करना यो शास्त्र करके जगत् का वाध है १ और घट से मृत्तिका का व्यतिरेक करके घट का अभाव निश्चय करना इसी प्रकार

ब्रह्म से व्यतिरेक करके सारे प्रपञ्च का अभाव निश्चय।
करना और जो देखने में आता है इसकूं भ्रान्ति निश्चय।
करके ब्रह्म मात्र निश्चय करना यो युक्ति करके जगत्का-
बाध है, यो जगत सब ब्रह्म है इसकूं इस प्रकार जानना
चाहिये ब्रह्माण्ड में जितने पदार्थ हैं सब में पांच वस्तु हैं
है भान होता है प्यारा है नाम रूप संस्कृत में अस्ति भा-
न्ति प्रिय नाम रूप से ऐसा बोलते हैं प्रथम के तीन अंश
सच्चिदानन्द ब्रह्म के हैं पदार्थ घटादि के नाश हुए भी
नहीं नाश होते हैं और नाम रूप ये दो माया के हैं माया
कूं मिथ्या होने से यो कार्य भी उसका नाम रूप दोनों।
अंश नाश हो जाते हैं अन्वय व्यतिरेक करके ब्रह्म मात्र।
निश्चय किया जाता है सोई लिखते हैं जैसे एक घट।
पदार्थ है है भान होता है प्यारा है ये तीन अंश उसमें ब्रह्म
के हैं और नाम घट और रूप का लालाल गोलाकारादि
ये दो माया के अंश हैं - है भान होता है प्यारा है यो ब्रह्म
का घट में अन्वय है फिर घट फूट गया माया के दोनों
अंश नाम रूप जाते रहे घट में माया के दोनों अंशों का
व्यतिरेक है और ब्रह्म का फिर भी अन्वय है कैसे टूक हैं
भान होते हैं प्यारे हैं - है भान होते हैं प्यारे हैं यो ब्रह्म के
तीनों अंश वैसेही हैं फिर उन टूकों का काल पाकर चू-
रण होगया माया के जो अंश नाम रूप थे वे दोनों नाश

होगये माया के दोनों अंशों का चूरशा में व्यतिरेक है और ब्रह्म का अन्वय है चूरशा है भान होता है प्यारा है फिर वो चूरशा भी काल पाकर नाश होगया नाम रूप माया के दोनों अंश नाश होगये चूरशा में माया के अंशों का व्यतिरेक है और ब्रह्म का अन्वय है कैसे चूरशा का अभाव है भान होता है प्यारा है ये तीनों अंश जैसे प्रथम घट में थे वैसेही घट के अभाव में हैं इसी प्रकार सब पदार्थों में अन्वय व्यतिरेक करके ब्रह्म निश्चय करना, तीनों अवस्था में भी अन्वय व्यतिरेक जाना चाहिये । जाग्रत् अवस्था में स्वप्न सुषुप्ति का व्यतिरेक है आत्मा का अन्वय है स्वप्न अवस्था में जाग्रत सुषुप्ति का व्यतिरेक है आत्मा का अन्वय है सुषुप्ति अवस्था में जाग्रत । स्वप्न का व्यतिरेक है आत्मा का अन्वय है तुर्या अवस्था में जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति का व्यतिरेक है आत्मा का अन्वय है इसी प्रकार बुद्धिमान सब जगे बिचार करे प्रसंग। यो था युक्ति करके भी जगत् का बाध है उसका यो । क्रम है समस्त स्थूल प्रपञ्च कूं स्थूल महा भूतों में मिला दे यो निश्चय करे पंच भूतों से पृथक् कुछ नहीं फिर स्थूल भूतों कूं और सूक्ष्म पंच भूतों के कार्य इन्द्रिय । मनादि कूं पंच सूक्ष्म भूतों में मिला दे फिर पृथिवी कूं जल में जल कूं तेज में तेज कूं वायु में वायु कूं आकाश में

आकाश कूं अहंकार में अहंकार कूं महत्त तत्त्व में महत्त तत्त्व कूं अज्ञान में अज्ञान मिथ्या है जैसे शुक्ति में रजत फिर अज्ञान कूं शुद्ध चैतन्य में मिलादे फिर सदा अभ्यास केवल करके योही चिंतवन करता रहै मैं शुद्ध ब्रह्म सच्चिदानन्द परिपूर्ण नित्य मुक्त हूं जो कभी व्यवहार दशा में प्रपंच प्रतीत होतो वैसेही अन्वय व्यतिरेक करके चैतन्य से पृथक् कुछ न जाने जैसे किसी मृग कूं रेती में यो भ्रान्ति हुई यो जल है वहां गया नेत्र सींग पैर से भले प्रकार निश्चय किया कि यो जल नहीं है फिर मृग उसी जगे आनकर जो देखता है तो वहां फिर भी भ्रान्ति से जल प्रतीत होता है परन्तु फिर यो जानता है कि यो जल नहीं है भ्रान्ति है जो पशू की यो बुद्धि है कि उस मृगतृष्णा में फिर नहीं प्रवर्त्त होता है बुद्धिमान कि जिसने श्रुति स्मृति युक्ति अनुभव करके ब्रह्म का निश्चय किया है वो कैसे संसार कूं सत्य जानेगा संसार का मिथ्याभ्यास भी उसकूं जब तक है कि जब तक प्रारब्ध कर्म का रचा हुआ जो शरीर नाश नहीं होता है पीछे उसके मुक्त रूप है युक्ति करके संसार का बाध योही है कि संसार कूं मिथ्या समझ लेना २ और मैं ब्रह्म हूं यो महा वाक्य श्रवण करके जो हुआ अपरोक्ष ज्ञान और ब्रह्म कूं साक्षात्त करके अज्ञान की जो निवृत्ति सो प्रत्यक्ष

बाध है, ऐसे तीन प्रकार करके संसार का बाध करना इसकूं अपवाद कहते हैं अध्यारोप अपवाद करके तत त्वम् पदार्थों का साधन भी हुआ है सोई दिखाते हैं, माया से लगाकर स्थूल समष्टि प्रपंच जड़ १ और उस करके उपहित चैतन्य २ और दोनों का आधार अनुपहित चैतन्य ३ ये तीनों पृथक् हैं और इन तीनों का तप्त लोहे के पिण्डवत् एक प्रतीत होना यो तत् पद का वाच्यार्थ है और पृथक् जो अखण्ड चैतन्य सो तत् पद का लक्ष्यार्थ है और अविद्या से लगाकर स्थूल व्यष्टि प्रपंच जड़ १ और उस करके उपहित चैतन्य २ और इन दोनों का आधार अनुपहित अखण्ड चैतन्य ३ ये तीनों पृथक् हैं और इन तीनों का तप्त लोहे के पिंडवत् एक प्रतीत होना यो त्वम् पद का वाच्यार्थ है और पृथक् अखंड चैतन्य त्वम् पद का लक्ष्यार्थ है इन दोनों तत् त्वम् पद का लक्ष्यार्थ कूं ग्रहण करके और वाच्यार्थ कूं मिथ्या जानकर वाच्यार्थ का त्याग करके तीन सम्बन्ध के सहित जहद जहद लक्षणा करके सो यो देवदत्त है इस लौकिक वाक्यवत् तत्त्वमसि यो महा वाक्य अखंडार्थ का बोधक है तीन सम्बन्धों का अर्थ बिना कुछ शास्त्र के पढ़े हुए भले प्रकार नहीं जाना जाता है न भले प्रकार भाषा में लिखा जाता है इसलिये कुछ तात्पर्य्य

लिखे देते हैं सामान्याधिकरराय १ विशेषरा विशेष्य भाव २ लक्ष्य लक्षरा भाव ३ समान है अधिकररा। जिसका सो सामान्याधिकरराय जो जिस में रहे उसकूं अधिकररा कहते हैं किसीने कहा सो यो देवदत्त है। सो अर्थात् काशी में तुमने हमने १६ वर्ष की अवस्था गृहस्थ आश्रम में जो देखा था सोई यो अर्थात् अब हरिद्वार में ३० वर्ष की अवस्था में जो दीखता है सो यो देवदत्त है पूर्व काशी १६ वर्ष की अवस्थादि का और हरिद्वार ३० वर्ष का अवस्थादि का त्याग करके केवल देवदत्त के पिराड मात्र में दृष्टि करके यो अर्थ बैठता है कि सो यो देवदत्त है, कहे हुए अर्थ कूं कुछ त्याग देना कुछ रख लेना इसकूं जहद जहद लक्षरा कहते हैं सो यो। देवदत्त है इस वाक्य का अर्थ जहद जहद लक्षरा करके हो सक्ता है जैसे इस वाक्य में जहद जहद लक्षरा है ऐसे और वाक्यों में भी किसी में जहद लक्षरा किसी में अजहत लक्षरा है तात्पर्य जिस वाक्य का अर्थ बुद्धि में न। बैठता हो कुछ बिरुद्ध प्रतीत होता हो तो उस वाक्य का अर्थ लक्षरा शक्ति व्यंजनादि करके निश्चय करते हैं उन वाक्यों के बहुत उदाहररा लिखने में बिस्तार होता है इसलिये थोड़े से उदाहररा लिखते हैं और उनके। लिखने का यहां कुछ प्रयोजन भी नहीं है जहद लक्षरा

वहहै कि कहे हुए वाक्यार्थ का त्याग करके और बनाकर लक्षणा करनी जैसे किसी ने कहा गंगा में गांव है वहां से दूध लेआओ उसने विचारा गंगा जीमें गांव का होना नहीं बनता इसहेतु से गंगाजीके तीरके गांव से दूध ले आया तात्पर्य कहनेवाले का तीर में था जहत् लक्षणा से यो अर्थ बनसक्ता है, अजहत् लक्षणा वहहै कि कहे हुए वाक्यार्थ कूं ग्रहण करके और भी कुछ अर्थ बनाकर लक्षणा करनी जैसे किसीने कहा कि दूधकी कौवनसे रक्षा करते रहना उसने अजहत् लक्षणा करके कौवन से भी रक्षा करी औरों से भी रक्षाकरी क्योंकि तात्पर्य दूध की रक्षा में था, जैसे पंकज का अर्थ यो है कि जो कीच से उत्पन्न हो सो पंकज विचारो कीच से बहुत वस्तु कसेरू आदि उत्पन्न होते हैं परन्तु पंकज की शक्ति कमल में हीं है, वाक्यार्थ के तात्पर्य कूं समझना यो व्यंजना है जैसे किसी स्त्री का पुरुष विदेश कूं जाता था स्त्री ने चलते समय प्रार्थना करी कि जहां आपका जाना हो उसी जगे मेराभी जन्म होवे अर्थात आपके जातेहीं मेरे प्राण छूट जावेंगे, प्रसंग सामान्याधिकरण्य कथासों सुनों सो और यो पद इन दोनों का जैसे देवदत्त का पिण्ड अधिकरण है ऐसे तत् त्वम् इन पदों का शुद्ध चैतन्य अधिकरण है तत् त्वम् पदों का सामान्याधिकरण्य संबन्ध

है, जैसे सो यो ऐसा कहो वा यो सो ऐसा कहो ऐसे
तत् त्वम् ऐसा कहो वा त्वम् तत् ऐसा कहो यो तत्त्वं
पदार्थों का विशेषण विशेष्य भाव सम्बन्ध है, जैसे
सो यो इन शब्दों का और इनके अर्थों का लक्ष्य लक्षण
भाव सम्बन्ध है सो यो ये दोनों पद तो लक्षण हैं और इन
लक्षणों से जो लखा जावे सो लक्ष्य देवदत्त का पिण्ड
है ऐसे तत्त्वम् पदों का और उनके अर्थों का लक्ष्य लक्षण
भाव सम्बन्ध है तत्त्वं ये पद तो लक्षण हैं और इन लक्षणों
से जो लखा जाते सो लक्ष्य एक शुद्ध चैतन्य है इस प्रकार
तीन सम्बन्ध करके अखण्डार्थ का बोध होता है जीव
की जो उपाधि अविद्या अल्पज्ञादि और ईश्वर की उपा-
धि माया सर्वज्ञादि इन दोनों उपाधियों का जहद जहद
लक्षणा से त्याग करके तात्पर्य तत्त्वं पदों के वाच्यार्थ
का त्याग करके लक्ष्यार्थ का ग्रहण करके केवल एक
शुद्ध चैतन्य में लक्षणा करनी तब तत्त्वमसि इस महा
वाक्य का अर्थ अखण्डार्थ निश्चय होता है अखंडार्थ
किसकूं कहते हैं सुनो स्वगत १ जैसे वृक्ष में पत्र पुष्पा
दि का भेद और सजातीय २ जैसे अनार आम्रादि का
भेद और विजातीय ३ जैसे वृक्ष और पाषाणादि का
भेद इन तीन भेद करके जो रहित सो अखण्ड अथवा
देश काल वस्तु करके परिछिन्न नहीं सो अखण्ड सारे

व्यापक होने से तो ब्रह्मदेश परिच्छिन्न नहीं और नित्य होने से काल परिच्छिन्न नहीं और सबका आत्मा होने से वस्तु परिच्छिन्न नहीं जो इस शरीर में सच्चिदानन्द भान होता है वोही ब्रह्म है और जिस कूं ब्रह्म कहते हैं वोही सच्चिदानन्द है जब ऐसा ज्ञान हुवा तब त्वम् पद का अर्थ जो जीव समझ रक्खा था वो उसी समय जाता रहता है और तत पद का अर्थ जो परोक्ष था तो भी उसी समय अपरोक्ष होजाता है फिर इस ज्ञान से जो होता है सो सुनो जो प्रथम त्वम् पद का अर्थ जीव समझ रक्खा था सोई अपरोक्ष परमानन्द रूप करके शेष रहजाता है इस प्रकार तत्त्वमसि जो महा वाक्यादि उनका अर्थ श्रवण करने से और मनननिदिध्यासन करने से जो हुआ अपरोक्ष ज्ञान उस ज्ञान करके अज्ञान की जो निवृत्ति और परमानन्द की प्राप्ति इसी का नाम मोक्ष है॥

इति श्री द्वितीयोऽध्यायः समाप्तः ॥ २ ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

कर्मकाण्डी और उपासना वाले स्वर्ग वैकुण्ठादि की प्राप्ति कूं सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सायुज्य नाम करके मुक्ति कहते हैं सो नाम मात्र मुक्ति हैं अनित्य होने से साक्षात् मुक्ति नहीं जैसे किसी पुरुष कूं कहना कि यो

पुरुष सिंह है वो पुरुष साक्षात् सिंह नहीं उसमें सिंह
के से गुण हैं ऐसे साक्षात् मुक्ति में जो गुण दुःखों की
निवृत्ति और परमानन्द की प्राप्ति ये दोनों उनमें भी
थोड़े थोड़े हैं दूसरे अध्याय के अन्त में जो मुक्ति कही है
सो मुक्ति दो प्रकार की है जीवन्मुक्ति १ विदेह मुक्ति २
जीवन्मुक्ति तीन प्रकार की है श्रेष्ठ १ मध्यम २ कनि-
ष्ठ ३ जीवते हुए उस आनन्द कूं सदा प्राप्त रहना अर्थात्
स्वभाव करके निर्विकल्प समाधि रहनी श्रेष्ठ जीवन्मु-
क्ति १ प्रयत्न करके बहिर्मुख अन्तःकरण की वृत्तियों कूं
निरोध करना मध्यम जीवन्मुक्ति २ यद्यपि दुःख सुखा-
दि अन्तःकरण के धर्म होने से आत्मा के साथ उनका
सम्बन्ध नहीं है यो विचार भी है तोभी दुःखादि के संबंध
करके अन्तःकरण का व्याकुल होजाना यो कनिष्ठजी-
वन्मुक्ति ३ देह पात के पीछे उस आनन्द कूं प्राप्त होना
विदेह मुक्ति, श्रेष्ठ जीवन्मुक्ति का यो नियम नहीं कि
सब ज्ञानियों कूं श्रेष्ठ जीवन्मुक्ति हो जैसे औषधि करने
से रोग की शान्ति होती है ऐसे प्रयत्न करने से श्रेष्ठ जी-
वन्मुक्ति भी सम्पादन होसक्ती है परंतु कुछ नियम नहीं
कि औषधि करने से नियम करके रोग जाता रहता है
पुरुषार्थ वादी तो योंहीं कहते हैं कि प्रयत्न मुख्य है ॥
जो श्रेष्ठ जीवन्मुक्ति किसी प्रतिबन्ध करके सम्पादन न

हो सके तो कुछ विदेहमुक्ति में सन्देह नहीं इस बात कूं
सिद्ध करते हैं ज्ञान की ७ भूमिका हैं तीन प्रथम की।
ज्ञान की साधन भूमिका हैं इसलिये वे भी ज्ञान की
भूमिका कही जाती हैं चौथी में अपरोक्ष ज्ञान होना।
है पिछिली तीन जीवन्मुक्ति भूमिका हैं प्रथम का।
लक्षण यो है शौच स्नानादि आचार गङ्गा जी से आदि
लेकर तीर्थों का सेवन विष्णु शिवादि की पाषाणादि
मूर्त्तियों की पूजा अश्वमेध यज्ञ से आदि लेकर यथा श-
क्ति ब्राह्मण अतिथि अभ्यागतों कूं अन्न वस्त्रादि देने
ऐसे ऐसे और भी बहुत कर्म हैं यो प्रथम भूमिका १
सगुण परमेश्वर के गुणानुवाद सुनकर परमेश्वर में
अनुराग होना और परमेश्वर के भक्त जो साधु ब्राह्मण
उन में प्रीति होनी और मन वाणी शरीर धन से उनका
सत्कार करना जो कदाचित् साधु अपने घर चले आवें
तो मन कूं आनन्द होना यो जानना हमारा बड़ा भाग्य
है यो मन से सत्कार है और वाणी से ऐसा बोलना मह-
राज आपका आना बहुत सुन्दर हुआ आप जंगम तीर्थ
हो हमारे पवित्र करने के लिये आप आये हो और शरीर
से हाथ जोड़कर खड़ा होजाना चरण सेवा से आदि ले-
कर टहल करनी अथवा और जगे महात्मा ठहर रहे हों
वहां जाकर सेवा करनी और धन से यथा शक्ति अन्न

वस्त्रादि देने और नित्याऽनित्य वस्तु का विचारना ऐसे ऐसे कर्मों से आदि लेकर और भी बहुत कर्म हैं यो दूसरी भूमिका २ संसार के पदार्थों कूं दुःख रूप अनित्य जान कर उनसे वैराग्य होना जैसा श्री रामचन्द्र जी कूं वैराग्य हुआ है वाशिष्ठ ग्रन्थ में वो कथा प्रथम हीं वैराग्य प्रकरण में प्रसिद्ध है और साधन चतुष्टय संपन्न होकर वेदान्त शास्त्र का श्रवण करना यो तीसरी भूमिका ३ शुक्ति में रजतवत् संसार कूं मिथ्या जानकर अपने निज स्वरूप। का बोध होजाना कि मैं यो हूं चौथी भूमिका यो हि विदेह मुक्ति में हेतु है चौथी भूमिका वालेका लक्षण यो है कि जैसे कोई पुरुष समुद्र के तीर खड़ा हैजो जलकी तरफ़। कूं देखता है तो जलही जल दीखता है और जब पी कूं देखता है तब मन्दिर वृक्षादिही दीखते हैं ऐसे जब वो पुरुष अपने स्वरूप का अनुसन्धान करता है तब संसार का अभाव और अपना स्वरूप साक्षात् प्रतीत होता है और व्यवहार के समय संसार के दुःख सुख शोक मोहादि जैसे। पहले थे वैसेही भुने अन्नवत् प्रतीत होते हैं जैसे भुना अन्न भूक दूर करने कूं समर्थ है जमने कूं समर्थ नहीं ऐसे उस। ज्ञानी कूं व्यवहार सुख दुःखादि का हेतु है परन्तु जन्म का हेतु नहीं और अज्ञानी की बराबर उसकूं दुःख सुख भी नहीं होते इस बात कूं भी अभी आगे दृष्टान्त देकर सिद्ध करेंगे।

चौथी भूमिका में शरीर या तो चण्डाल के घर में या का-
शी में छूटो आनन्द पूर्वक छूटो या मूर्च्छा रोग होकर लोट
ते पोटते छूटो मुक्ति में सन्देह नहीं वो मुक्त उसी समय
होगया जिस समय उसको ज्ञान हुआ मूर्च्छादि होने से
ज्ञान का नाश नहीं होता जैसे विद्या कूं स्वप्न सुषुप्ति मू-
र्च्छादि में भूल भी जाता है परन्तु कुछ अगले दिन नहीं
बढ़ता ४ पांचवीं भूमिका का लक्षण यो है कि जैसे कोई
पाव कोस समुद्र में आधे शरीर जल में खड़ा हो उसकूं
बहुत बिचारने से समुद्र के तीर के मन्दिर वृक्षादि देखा
करते हैं वैसे उसकूं संसार का व्यवहार बहुत किसी के
सुनाने देखने से प्रतीत होता है ५ छठी भूमिका में गले
तक जल की कल्पना करलेनी ६ सातवीं भूमिका में
जल में प्रवेश होजाना सातवीं भूमिका वाले का शरीर
हद बीस दिन रहता है क्योंकि भोजनादि का अभाव हो
जाता है ७ चौथी भूमिका वाले से लेकर सातवीं तक
एक से एक सिवाय ब्रह्म वित् कहे जाते हैं, ब्रह्मवित् ४
ब्रह्म विद् वर ५ ब्रह्मविद् वर्यान् ६ ब्रह्म विद् वरिष्ट ७ मू-
र्ख योहीं कहते हैं कि जैसा हमने पांचवीं छठी सांतवीं
भूमिका का लक्षण लिखा है ऐसे ज्ञानी होते हैं और
चौथी भूमिका वाले में बहुत तर्क करते हैं उनकी पूर्व
पक्ष की तर्कों का खण्डन वेदान्त शास्त्र में बहुत लिखा

है कुछ एक लेस मात्र यहांभी लिखते हैं। शंका। किजो खावे पीवे नहीं और शरीर इन्द्रियादि करके चेष्टा न करता हो सो ज्ञानी है। उत्तर। ज्ञान क्या हुवा रोग हुआ ऐसे तो रोगी होते हैं रोगियों कूं भी ज्ञानी कहा चाहिये। शंका। जिसकूं दुःख सुख न प्रतीत होता हो तो ज्ञानी है। उत्तर। दुःख सुख का अभाव जड़ पदार्थों में होता है वे ज्ञानी हैं। शंका। संसार का अनुभव न होना यो ज्ञान का लक्षण है। उत्तर। संसार तो सुषुप्ति मूर्च्छा प्रलयादि में भी अनुभव नहीं होता वहां भी तो संसार का बाध है। प्रश्न। फिर संसार का क्या बाध है और क्या ज्ञान का लक्षण है। उत्तर। संसार का यो ही बाध है कि जो दूसरे अध्याय में तीन प्रकार का बाध लिख आये हैं और ज्ञान का भी यो ही लक्षण है कि जब तक जो शरीर प्रारब्ध कर्म का रचा हुआ नष्ट नहीं होता तब तक संसार कूं मिथ्या समझना तात्पर्य जब तक संसार स्वरूप से मर्दन नहीं हो सका क्योंकि मिथ्या पदार्थ कूं मिथ्या जानने से उसका अभाव नहीं होता जैसे बाजीगर के पदार्थ मिथ्या जाने से स्वरूप करके मर्दन नहीं होते इस प्रकार यह संसार रहता है परंतु देह पातके पीछे स्वरूप से भी मर्दन होता है इस में वेद प्रमाण है अन्यथा वशिष्ठादि ब्रह्मज्ञानी थे इस में क्या प्रमाण है। शंका। ज्ञान तो होगया फिर प्रारब्ध कर्म का फल दुःखादि

क्यों न नाश हुआ। उत्तर। तीरने पुरुष कूं भेदन तो कर लिया आगे क्यों चला और दूसरे कुम्हार ने बर्त्तन उतारने के लिये चाक घुमाया बरत्तन तो उतार लिया फिर चाक क्यों घूमता है शंका। ज्ञान ने संसार कूं स्वरूप में और प्रारब्ध कर्म कूं क्यों न नाश किया। उत्तर। प्रारब्ध कर्म और यो संसार मिथ्या भास मुरदे की नाईं कुछ ज्ञान के विरोधी नहीं प्रत्युतज्ञान कूं उत्साह बढ़ानेवाले हैं जैसे किसी पुरुष की मारी हुई हज़ारों लाशें पड़ी हों त्रो शूर उनको देख देख आनन्द होता है शंका। जो ज्ञानी पूर्ववत् संसार के भोग भोक्ता रहा तो ज्ञानी अज्ञानी में क्या भेद हुआ उत्तर। ज्ञानी राग पूर्वक संसार के भोग नहीं भोक्ता जैसे किसी के शिरपर कोई बेगार रखदे तो क्या बेगार के उठाने में उसको उत्साह है। शंका। बेगारी कूं तो दुःख होता है जो ज्ञानी कूं भी दुःख हुआ तो ज्ञान का क्या फल हुआ। उत्तर। ज्ञानी का दुःख मुक्ति के आनंद में दबा रहता है जैसे दो बेगारी हैं एक जान्ता है कि मैं दो घड़ी में छूहूंगा दूसरा नहीं जान्ता कि मैं कब छूहूंगा हे वादी विचार देख दुःख दोनों का सम प्रतीत होता है परंतु जानने वाले कूं थोड़ा दुःख है नहीं जानने वाले कूं बहुत दुःख है ऐसे ज्ञानी अज्ञानी के दुःख में बहुत भेद है शंका। तुम तो जैसे प्रथम थे वैसेही अब भी दीखते हो ज्ञान

होकर कुछ श्रौर प्रकार के न हुए उत्तर। जिस समय तुम कूं रज्जु में सर्प की भ्रांति हुई थी उसकूं देखकर कंपने लगे थे श्रौर गिरकर चोट लग गई थी फिर किसी के उपदेश श्रौर श्रपनी युक्ति से रज्जु का श्रनुभव किया तुम कहो कि श्रापकी सूरत भी बदली थी कहता है कि मेरी सूरत तो नहीं बदली थी परन्तु श्रंतःकरण की वृत्ति बदल गई थी उत्तर फिर हमारे श्रंतःकरण के साक्षी क्या तुम हो जैसे भ्रांति समय तुम कूं कंपा थी पीछे निवृत्ति होगई सूरत न बदली ऐसे हमकूं भ्रांति थी सो निवृत्ति होगई श्रपने श्रन्तःकरण के हम साक्षी हैं शंका। तुम कहते हो यो जगत् श्रज्ञान का कार्य है वो श्रज्ञान तो नाश होगया कार्य उसका कैसे बना रहा उत्तर। भ्रांति समय जो तुम कूं कंपा थी श्रौर गिरकर चोट लगी थी फिर जिस समय वो भ्रांति दूर हुई कार्य उस भ्रांति का वो कंपा श्रौर वो चोट उसी समय जाती रही थी कहता है कंपा तो दो घड़ी के पीछे श्रौर चोट दश दिन के पीछे होगई थी। उत्तर। श्राश्चर्य की बात है जो घड़ी भर भ्रांति नहीं रही उसका कार्य तो दश दिन के पीछे गया श्रौर हमारा श्रज्ञान श्राद्य संख्या से भी परे का था वो नाश हुआ है उसके कार्य कूं कहते हो कि उसी समय क्यों न जाता रहा शरीर प्रान्त के पीछे कार्य भी नाश होजावेगा श्रौर भी बहुत दृष्टान्त हैं दृष्टान्त कहने के पीछे

वैसाही हरा प्रतीत होता है और किसी वस्त्र वा पात्र में
गन्ध रक्खी हो पीछे निकालने के भी कई घड़ी गन्ध ।
बनी रहती है और किसी कूं स्वप्न में सिंह ने भड़काया ।
वो जाग उठा देखता है कि सिंह नहीं परंतु कंपा दो घड़ी
पीछे जाती है।शंका। ये जो तुम भोग भोगते हो ये ज्ञान
कूं नष्ट करेंगे।उत्तर।जीते हुए चूहेने बिलाई को न मारा
तो मरा क्या मारेगा और जैसे कोई बज्र लगने से न मरा
क्यों वो तुली की तीर से मरेगा जिस काल में अज्ञान बड़ा
हुआ था उस समय तो ज्ञान नाश हुआ नहीं अब तो उस ।
अज्ञान कूं ज्ञानने नाश कर दिया उसका कार्य ये अन्न ।
भक्षणादि तुच्छ पदार्थ ज्ञान कूं क्या नष्ट करेंगे । और ।
दूसरे जो पुरुष चोर जार कूं जानता है वे चोर जार उसके बुरे
होने का प्रयत्न नहीं करते और डरते रहते हैं और जो प्र-
यत्न करें भी तो वो चैतन्य है ऐसे ज्ञानी इन भोगरूप चो-
रों को जानता है और तीसरे कोई स्त्री नेत्र शरीरादि करके
तो सुन्दर हो परंतु उसकी उपस्थ इन्द्रिय में गरमी का विकार
हो जो उस विकार कूं जानता है उसकूं उस स्त्री के हाव भाव
कटाक्ष नहीं मोहते नवो स्त्री उसके सामने हाव भाव क-
टाक्ष करती है ऐसे ज्ञानी इस माया रूपी स्त्री के अवगुणों
कूं जानता है।शंका।जो तुम सदा ब्रह्माऽहम्ऽस्मि ब्रह्माऽ
हम् ऽस्मि ऐसा अनुसंधान न करते रहोगे तब जो ब्रह्म ज्ञान

नष्ट होजावेगा। उत्तर। तुम ब्राह्मणो ऽहम् ब्राह्मणो ऽहम् इसका सदा अनुसंधान न करोगे तो भूल जाओगे जैसे तुम अपनी जाती कूं नहीं भूलते वैसे हमने एक वेर वस्तु का। निश्चय कर लिया है वो हमारा ज्ञान कैसे जाता रहेगा। और आपका निश्चय तो झूंठा है एक युक्ति से जाता रहता है यो भी कहता है कि मेरा शरीर है और यो भी कहता है कि मैं ब्राह्मण हूं कितना विरोध है ऐसा निश्चय तो आप का बिना अनुसंधान के बना रहेगा और हमारा जो निश्चय है कि सहस्रों श्रुति स्मृति युक्ति और अनुभव करके और तुम सदृश वादियों के मतों कूं खंडन करके जो निश्चय किया है वो बिना अनुसंधान के जाता रहेगा। शंका। जिनकूं शाप अनुग्रह की समर्थ होती है वे ज्ञानी हैं। उत्तर। शाप अनुग्रह ज्ञान का फल नहीं तप का फल है। शंका। ज्ञान बिना तप के कैसे हुआ। उत्तर। तप दो प्रकार का है एक तप। शाप अनुग्रह की सामर्थ करा देता है और एक तप ज्ञान कूं उत्पन्न करता है। शंका। व्यास वशिष्ठ सनकादि भी तो ज्ञानी हैं। उत्तर। उनके दोनों प्रकार का तप है हमारे एक ही है दूसरे तप न होने में कुछ ज्ञानी की क्षती नहीं है जैसे जोहरी वस्त्रादि की परीक्षा न कर सके तो उस जौहरी की क्या क्षती है ऐसे ही ज्ञानी गंडा तावीज़ प्रेतादिकों के मंत्रादि न जान्ता होतो क्या ज्ञानी की क्षती है तात्पर्य ऐसी ऐसी

तर्कों का खंडन बहुत वेदान्त शास्त्र में लिख रहा है मुक्ति की इच्छावाला ऐसे २ वादों में बुद्धि को न समाप्त करे केवल वेद वाक्य में बिश्वास करे और जो पुराणादि में जड़ भरतादि लिखे हैं कोई कहे कि ऐसे ज्ञानी होते हैं तो क्या उसके मुख में मारने के लिये श्रुति रूप वज्र नहीं है तात्पर्य वेद ऐसा भी। कहते हैं जैसे जड़ भरतादि हुए हैं और ऐसा भी कहते हैं ज्ञानी अपनी अवस्था वालों के साथ बिहार करता हुआ और सवारियों में बैठा हुआ स्त्रियों के साथ रमता हुआ वो ज्ञानी अपनी दृष्टि में कुछ नहीं करता है वशिष्ठ याज्ञवल्क्य से आदि लेकर। बहुत प्रसिद्ध हैं और जनक चूड़ालादि बहुत स्त्री तक ज्ञानी हुए हैं क्या सब जड़ भरतवत् आचरण करते थे तात्पर्य यो है मूर्ख लोग वेद शास्त्र के एक २ देश कूं सुनकर वेद शास्त्र के तात्पर्य कूं न जानकर कुछ २ बक्ते हैं उनका निश्चय उनके रहो हमको क्या काम है हम सिद्धान्त कहते हैं प्रथम तो। जड़ भरतादि भी खाना सोना आदि त्याग करके काष्ट पाषाणवत् नहीं रहे संग की भांति से उदासीन रहते थे क्योंकि संगी लोगों करके बाध हो जाता है और निसंग सुख। कूं प्राप्त होता है इसलिये सदा सुख की इच्छा वालों ने संग त्याग देना ज्ञान की परीक्षा के लिये वैराग्य उपरति बोध कूं हेतु १ स्वरूप २ कार्य ३ अवधि ४ इन चार चार भेद करके लिखते हैं वैराग्य के हेतु आदि ये हैं ॥

शब्दादि विषयों में दोष दृष्टि होनी १ त्यागदेना २ फिर भोगों में दीनता न होनी ३ ब्रह्मलोक कूं तृणावत समझ-ना ४ उपरति के हेतु आदि ये हैं॥ यम नियमादि १ अन्तः करण का निरोध २ व्यवहार का बहुत कम होजाना अ-र्थात् खाने सोने में भी संकोच ३ सुषुप्तिवत् जाग्रत अवस्था रहनी॥ बोध के हेतु आदि ये हैं॥ श्रवणादि १ तत्त्व मिथ्या का जान लेना २ फिर ग्रंथिका उदय नहोना अर्थात् देहादि में अहंबुद्धि न होनी ३ जैसे प्रथम देहादि में अहंबुद्धि थी वैसीही स्वरूप में दृढ़ बुद्धि होजानी ४ मु-क्ति की इच्छा वालों के वैराग्यादि के हेतु आदितारतम्यता करके रहते हैं क्योंकि सबके कर्म एक प्रकार के नहीं इन सब में कि जो वैराग्यादि के हेतु आदि लिखे हैं उन में तत्त्व मिथ्या का जान लेना जो बोध का स्वरूप लिखाहै योही मुक्ति का कारण है और सब ज्ञानियों के योही एकरस है। जो वैराग्यादि के हेतु आदि ऊपर लिखे हैं वैसे जो किसी के होंतो बहुत पुण्य का फल है उससे सिवाय कोई पुण्य नहीं और जो किसी प्रतिबन्ध करके तीनों एक जगे न देखने में आवें तो उनके फल ऐसे होंगे कि वैराग्य उपरति तो पूर्ण हो बोध किसी प्रतिबन्ध से न हो तो मुक्ति नहीं होगी तपके बल से ब्रह्मसाकार की प्राप्ति होगी और जो बोध है वैराग्य उपरति इस जन्म में न देखने में आवें तो मुक्ति निश्चय होगी।

परन्तु जबतक यो शरीर रहेगा हर्ष शोकादि आभास मात्र बने रहेंगे बोध का स्वरूप सब ज्ञानियों के एक रस है वैराग्य उपरति में तार तम्यता है जैसे १०० गौ दूध सब का एकसा एक रस और व्यक्ति दुर्बला पन मोटा पन स्वभावादि पृथक् २ ऐसे १०० ज्ञानी ज्ञान सबका एक रस और व्यवहार चलन सा भावादि सत्त्वादि गुणों की उपाधि से पृथक् २ अर्थात् किसी के सत्त्वगुण बहुत किसीके रज तम बहुत हैं सत्त्वगुणी शुकदेव,वामदेव,जड़ भरत,सनकादि और रजोगुणी जनक,चूड़ालादि और तमोगुणी दुर्वासादि सत्त्व रज तमोगुणाधिकृत वर्त्तने से सत्त्वगुणी रजोगुणी तमोगुणी कहे जाते हैं परंतु तीनों गुण सबके तार तम्यता करके वर्त्तते हैं॥ ज्ञान के होने और वैराग्य उपरति सिद्धि लक्ष्मी आदिके न होनेमें यो व्यवस्था है ज्ञान उपरति वैराग्य सिद्धि लक्ष्मी आदि पुण्य का फल हैं जिसके पूर्ण पुण्य हुआ जैसे जल से घट भरा रहता है उस के तो वैराग्य उपरति ज्ञान सिद्धि लक्ष्मी आदि सब होते हैं और जो केवल ज्ञान हो वैराग्यादि न होतो उसमें भी थोड़े पुण्य का फल है और जो ज्ञान न हो वैराग्य उपरति हो उस से भी थोड़े पुण्य का फल है और जो वैराग्य उपरति ज्ञान तीनों नहीं सिद्धि लक्ष्मी आदि हों उससे भी थोड़े पुण्य का फल है और जो सिद्धि वैराग्यादि न हो केवललक्ष्मीराज्यादि

हो उससे भी थोड़े पुराय का फल है राजा से लगाकर कंगाल पर्यन्त पुराय की तार तम्यता कल्पना करलेनी पुराय की तार तम्य से ज्ञानियों के वैराग्य की भी तारतम्यता कल्पना कर लेनी जो तीनों वैराग्यादि किसी ज्ञानी के देखने में आवें तो वो ज्ञानी ऐसा है जैसा मनुष्यों में चक्रवर्ति राजा जैसे जड़ भरत शुकादि हैं ऐसा नहीं समझना कि जो ऐसेही हों वोही ज्ञानी हैं और ऐसे होंकी मुक्ति होतीहै-शंका फिर ऐसे पुरुषों की शास्त्र में बड़त प्रशंसा क्यों लिखी है ॥ उत्तर ॥ ऐसे पुरुषों कूं जीवन्मुक्ति का बड़त आनन्द रहता है जैसे चक्रवर्ति राजा कूं मनुष्यानन्द बड़त रहता है और जैसे राजा से जो कम लक्ष्मी आदि वाले हैं उनकूं भी तो आनंद तार तम्यता करके रहता है और वे भी तो मनुष्य ही कहे जाते हैं ऐसे वैराग्य उपरति में कमजो ज्ञानी हैं वेभी ज्ञानी हैं अज्ञानी नहीं । शंका । ज्ञानी के लक्षण शास्त्र में ऐसे ऐसे लिखे हैं क्रोध शोक भय न होना जितेन्द्रिय, क्षमा, वैराग्य, दया, निर्लोभ, दाता, सबका प्यारा होना ॥

टी॰। दाता होना अर्थात् अभय दान देना अभयदान दो प्रकार का है एक यो अपने शरीर वाणी मन से किसी कूं भय न देना दूसरे ज्ञान का उपदेश करके संसार के दुःखों से अभय कर देना ॥

मू॰। ये ज्ञानके चिन्ह हैं ऐसे २ वाक्यों की क्या गति।

होगी। उत्तर। ऐसे २ वाक्य प्रथम तो ज्ञान होने के लिये। और ज्ञान के पीछे जीवन्मुक्ति की सिद्धि के लिये ताकीद में हैं एकादशी के व्रतवत् नियम नहीं जो एक दाना भी अन्न का मुख में जा पड़े व्रत टूट जावे ऐसेही जो कभी किसी पाप के उदय होने से ज्ञानी कूं काम क्रोध आजावे तो ज्ञान नहीं जाता रहता जिस काल में सनकादि महा ज्ञानी श्री नारायण जी के मिलने के लिये वैकुण्ठ कूं गये थे। नारायण के पार्षदों ने जब उनकूं भीतर जाने के लिये। मने किया तब उनको क्रोध आगया फिर शाप दे दिया अर्थ से यो भी प्रतीत होता है काम के बिना क्रोध नहीं आता विचारो ज्ञान उनका नहीं जाता रहा और यो जो शंका। करे कि वे ईश्वर थे समर्थ थे अर्थात् वे ईश्वर की दीक्षा एक कोटी में हैं तो मनुष्य कोटी में ऐसी २ अनेक कथा पुराणों में वेदों में दुर्वासादि की प्रसिद्ध हैं और दूसरे यो कैमुतिक-न्याय है जो समर्थ पुरुषों कूं ईश्वरों कूं काम क्रोध आये तो जीव का तो यो अनादि स्वभाव है जीव का काम क्रोध के आजाने में क्या आश्चर्य है। शंका। ज्ञानी का दूसरे कूं। उपदेश करने से क्या काम है। उत्तर। ज्ञानी कूं जगत में यो ही एक करने के योग्य है कि जैसे बने अज्ञानी कूं ब्रह्म तत्त्व का उपदेश करे। शंका। श्री भगवान् तो यो कहते हैं कि कर्म संगी पुरुषों कूं कर्म से न हटावें। उत्तर। श्री भगवान

न कर्म संगी पुरुषों का ऊभी जगे विशेषण दे रक्खा है कि अज्ञानी कर्म संगी कूं ब्रह्मतत्त्व का उपदेश न करे। शंका। ज्ञानियों की व्यवस्था तो ऐसी २ सुनी जाती है कि जब। उनकूं ज्ञान हुआ फिर वे किसी से न मिले मौन होकर। उत्तराखण्ड को चले गये। उत्तर। यो लक्षण अवधि का है कोई ऐसा भी हुआ हो परन्तु सबका नियम नहीं और दूसरे सत्ययुगादि ऐसे समय थे कि अस्थि आदि में प्राण बने रहते थे और कुछ कवि पुरुषों का नियम है कि बढ़ा कर लिखते हैं और जो यो न मानो तो ग्रन्थों का बनना। उपदेश करना यो बिना प्रवृत्ति के कैसे बने विद्या का लोप हुआ चाहिये वेद श्री कृष्णचन्द्र महाराज कहते हैं कि ज्ञान के लिये गुरूजी के पास जावे हे अर्जुन तुमकूं वे गुरु उपदेश करेंगे देखिये जो प्रवर्त होंगे तो उपदेश करेंगे और जो बोलें बतलावेंगे नहीं दृष्टान्त युक्ति न देंगे अथवा उनका पता। ही न लगेगा तो बोध कैसे होगा वेद कहते हैं कि आचार्य-वान पुरुष ब्रह्म कूं जानता है तात्पर्य यो ही है कि मूर्ख वेद शास्त्र के हृदय कूं न जानकर कुछ का कुछ बकता है ऐसे। सिद्धान्त शारीरक भाष्य पंचदशी आदि ग्रंथों में श्रुति। स्मृति प्रमाण दे दे कर सिद्ध कर रक्खे हैं जिस किसी के। सन्देह हो वहां से निश्चय करे और जिसकी गुरु वेदान्त में श्रद्धा है वो तो संशय विपर्यय रहित होकर निश्चय मुक्त होगा।

इति श्री आनन्दाऽमृतवेदान्त शास्त्रे तृतीयोऽध्यायः ३॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

जो किसी पुरुष कूं किसी पाप के प्रतिबन्ध से महा॰ वाक्य का अर्थ सुनकर अपरोक्ष ज्ञान न होवे तो वो फिर॰ साधन करे प्रथम अध्याय में जो विवेकादि चार साधन॰ कहे हैं मुख्य सार वेही हैं उनहीं चारों कूं आचार्यों ने नाना प्रकार से लाखों श्लोकों में और भाषा में कहा है उनहीं॰ चारों का अर्थ स्फुट होने के लिये उनहीं चार साधनों कूं॰ अब और प्रकार करके लिखते हैं ज्ञान के साधन दो प्रकार के हैं अन्तरंग १ बहिरंग २ अन्तरंग मुख्य है बहिरंग गौण है बहिरंग साधन ये कहलाते हैं शौच स्नान संध्या बन्दन वेद शास्त्रों का पढ़ना पाठ करना तर्पण हवन करना अति-थि अभ्यागत का पूजन करना सेवा करनी अन्न देना ऐसे ऐसे और भी बहुत नित्य कर्म हैं उनके न करने में पाप है करने से पाप की निवृत्ति होती है ❋ और पुत्रादि के जन्मा दि में जातिकर्म श्राद्धादि करने पूर्णमासी संक्रांत्यादि॰ में तीर्थों में जाना स्नान दान करना निःकाम यज्ञ करने ऐसे २ और भी बहुत नैमित्त कर्म हैं, और कोई अपने से खोटा काम शास्त्र से विरुद्ध होजावे उसकी निवृत्ति के लिये चान्द्रायणादि व्रत और श्री गंगाजी में स्नानादि॰

करने ऐसे २ और भी प्रायश्चित कर्म हैं, और बद्रीनाराय-णादि के दर्शन करने तीर्थों का सेवन करना पाषाणादि मूर्त्तियों कूं पूजना परिक्रमा करनी झांझ घंटादि बजाने धोके धोती से रोटी खानी यो खाना यो न खाना इस बरतन में खाना इस बरतन में न खाना इसके हाथ का खाना इस के हाथ का न खाना या ब्राह्मण यो क्षत्री वर्णादि यो ब्र-ह्मचारी यो गृहस्थी आदि आश्रमी इस प्रकार के और भी बहुत बहिरंग साधन हैं पुराणों में धर्म शास्त्रादि में उनका बहुत विस्तार है वहां से सुनकर सम्पादन करे परम प्रयोज-न उनका अन्तःकरण की शुद्धि है बहिरंग प्रथम मन्दबुद्धि के लिये है अन्तरंग बुद्धिमान के लिये हैं बहिरंग साधन अ-न्तरंग साधनों की इच्छा रखते हैं अन्तरंग बहिरंग साधनों की इच्छा नहीं रखते और ऐसा जो कहते हैं कि कर्मकांड और उपासनाकांड ज्ञान के साधन हैं वहां जो व्यवस्था है जो उपासना इस प्रकार की है कि पाषाणादि मूर्त्तियों का पूजन करना और झांझ घंटा बजाने परिक्रमा करनी और भी बहुत ऐसी २ उपासना का बहिरंग साधनों में अन्तर्भाव है और परमेश्वर का ध्यान करना प्रेम करना विषयों से रुक कर चित्त कूं परमेश्वर में लगाना ऐसी २ उपासना का अन्तरंग साधनों में अन्तर्भाव है, अन्तरंग साधन ये कहलाते हैं मन में मान नहीं रखना कि ऐसे

पण्डित जाती में ब्राह्मण धनवाले हैं और अपने गुणों की औरों से श्लाघा कराने की इच्छा न रखनी इसका नाम। अमानित्व है १ धर्मध्वज न होना जो अपने में थोड़े गुण हों तो औरों के सामने बहुत नहीं प्रकट करने ऐसा हम। जानते हैं ऐसी पूजा करते हैं ऐसे २ पाखंडों का त्यागकरना इसका नाम अदंभित्व है ३ मन वाणी शरीर से किसी कूं दुःख न देना इसका नाम अहिंसा है ३ बेप्रयोजन किसी ने आपकूं बुरा बोला अथवा मार भी दिया समर्थ होकर उसकूं कुछ न कहना यो समझना कि प्रारब्ध का भोग है इसका कुछ दोष नहीं इसका नाम क्षमा है प्रसन्न चेष्टा रखनी नम्र होकर चलना अकड़ ऐंठकर न चलना नम्र। बोलना मन्द मुसकान पूर्वक ऐसा बोले मानों मुख से फूल झड़ते हैं दूसरे का क्षोभित हृदय भी शान्त होजावे इसका नाम कोमलता है ५ गुरु की मन वाणी शरीर। करके उपासना करनी ६ व्यवहार में छल न करना अन्तः करणागत जो दोष हैं उनकूं दूर करना इसका नाम अन्तर शौच है और बहिः शौच जल मृत्तिकादि करके ७ सन्मार्ग में स्थित रहना जैसे जो जगत में कहानी हैं, धर्म किये जो होवे हान् तोभी न छोड़ धर्म की बान् ॥ एक इतिहास भी लिखते हैं एक ब्राह्मण बाल्य अवस्था से ठाकुर सेवा करता था कोई उससे पाप बुद्धि पूर्वक नहीं बना था एक

दिन उसकूं रस्ते में चार आदमियों ने घेर लिया जो कुछ।
उसपे था छीन लिया और कहा कि तुमकूं मारेंगे ब्राह्म-
ण ने विचारा कि मैंने बाल्य अवस्था से ठाकुर सेवा।
करी है कोई पाप नहीं किया ये मुझ कूं वृथा मारते हैं
सो मारो परंतु जो ये कहैं तो ठाकुर जी को तो तीर्थ में प-
धारदूं कोई वहां पास जलाशय था उनसे आज्ञा लेकर।
ठाकुरजी का सिंहासन हाथ में लेकर कहा हे परमेश्वर।
बाल्य अवस्था से आपकी सेवा करी थी आज उसका।
यो फल है कि बिना पाप मारा जाता हूं वहां आकाश।
वाणी हुई कि तुमने पूर्व जन्म में इन चारों को एक २ बेर
मारा था यो पूजा का फल है जो तुम कूं ये चारों एक बेर
मारते हैं यो सुनकर चारों आदमी वहां गये बूझा कि।
तुम किससे बात करते थे उसने कहा तुम कूं क्या काम है
जो मुझ कूं मारना है तो मारदो बहुत बेर जो उन्होंने बूझा
फिर सब व्यवस्था ठाकुर सेवादि की सुनादी चारों ने उस-
कूं छोड़ दिया और जो कुछ उससे छीना था दे दिया और।
कहा कि हम चारों तेरे पिछले किये का इस लोक पर-
लोक में बदला नहीं चाहते ८ देह का निग्रह करना रात्रि
का जो बीच उसमें डेढ़ पहर सोना उससे सिवाय आसन
पर सीधा स्नानादि क्रिया के बिना बैठकर श्रवणादि।
करते रहना ९ शब्दादि विषयों से वैराग्य करना १० अहं-

कार न करना कि मैं ऐसा वैराग्य वाला हूं ११ जन्म मृत्यु जरा व्याधि में दुःख और दोष भी हैं बारम्बार उनका अनुसंधान करते रहना क्योंकि जब तक शरीर कूं किसी रोग ने नहीं ग्रसा श्रोत्रादि इन्द्रिय भी बने रहते हैं जरा भी न होवे जब तक ही कुछ पुरुषार्थ होसक्ता है कोई कहे कि साहब जब प्यास लगेगी जबही कुंआ खोद लेंगे पीछे की बात किसने देखी है जैसे प्यास समय वो त्राहि २ करके मर जाता है ऐसेही जो बने काम में मोक्ष का उपाय नहीं करते पीछे वही व्यवस्था होती है १२ पुत्र दारादि में आसक्ति न करनी अनित्य जानकर प्रीति का त्याग करना १३ पुत्रादि के दुख सुख में यो अध्यासन करना कि मैं सुखी दुःखी हूं १४ इष्ट अनिष्ट की प्राप्ति में सम चित्त रहना क्योंकि लाभहानि दिन रात्रि ऋतु युगादि वत् बदलते रहते हैं अष्टावक्र जी कहते हैं कौनसी वो अवस्था और काल है कि जिसमें प्राणियों को द्वंद्व,हर्ष,शोक,हानि, लाभ,सुख,दुःखादि नहीं रहते जो पराये वश होने वाले कार्य हैं उनका जो प्रतीकार होता तो बलराम युधिष्ठिरादि दुःख करके क्यों दुःखी होते १५ परमेश्वर के विषय अनन्य योग करके भक्ति करनी अर्थात् परमेश्वर के बिना नहीं है भजन के योग जिस भक्ति में ऐसी अव्यभिचारिणी भक्ति करनी तात्पर्य सर्वात्म दृष्टि होना १६ एकांत देश

शुद्ध चित्त का प्रसन्न करनेवाला हो जिसजगे सिंह सर्प चो-
रादि की भीती न हो और आपकूं स्त्री आदि करके विक्षेपन
होवे उस देश का सेवन करना १७ प्राकृत जोजन कि जो
स्त्री का संग और खाना सोनादि इसी कूं कहते हैं कि इस
शरीर द्रुम का येही फल है ऐसों के समीप नहीं बैठना १८
वेदान्त शास्त्र के श्रवणादि विचारने में सदा लगे रहना तत्वं
पदार्थों की जो शुद्धि उसी में निष्ठा रखनी तीसरे अध्याय
में भी लिख आये हैं कि ज्ञान के हेतु श्रवणादि हैं ज्ञान
के होने में ये मुख्य साधन हैं इसी बात कूं प्रथम तो वेद
भगवान् ने कहा है फिर व्यास जीने भी सूत्र में कहा है
कि वारम्बार श्रवण करना एकही बेर न करना पंचदशी
कार भी कहते हैं कि मनवाणी आदि कूं तक सावकाश
नहीं देना मरने सोने पर्यन्त वेदान्त शास्त्र की चिंता करके
काल कूं विचारना तात्पर्य श्री कृष्ण श्री शंकराचार्य्य
भगवान् से आदि लेकर सब आचार्य इसी बात कूं सिद्ध
करते हैं कि मुक्ति की इच्छावाले ने वेदान्त शास्त्र बारम्बार
श्रवण करना वेदान्त शास्त्र के बिना और पुराण शास्त्रों
का श्रवण न करना इसका भी नियम कर दिया है क्योंकि
बुद्धि एक है विचल न जावे वशिष्ठ जी भी कहते हैं कर्म वो
है जो बन्धन के लिये न हो विद्या वो है जो मुक्ति के लिये हो
निः काम कर्म के बिना और कर्म केवल आयास के लिये

है ब्रह्म विद्या के बिना और न्याय शास्त्रादि चित्रकारी आदिवत् विद्या है १९ सबसे सिवाय इस देह का फल मुक्ति कूं समझना मुक्ति के साधनों में ऐसे प्रलय करना जैसे किसी के शरीर में अग्नि लगजावे वस्त्र बाल जलने लगे जैसे वो गंगा जी कूं दौड़ता है जो कोई रस्ते में एक बात भी करले अथवा लोभ देकर खड़ा रक्खे तो नहीं खड़ा होता ऐसे संसार के तापों में ताप हुआ यो पुरुष ब्रह्मविद्या गंगाजी कूं जलदी प्रसन्न करके प्राप्त हो स्त्री धन वस्त्रादि जो रचे इस माया के झूंठे अनित्य दुखदाई पदार्थ हैं उन में भोग बुद्धि करके पतंगवत् नष्ट न हो २० ये बीस साधन श्री कृष्णचन्द्र ने गीता शास्त्र में कहे हैं और २६ साधन दैवी सम्पत के कहे हैं उनकूं भी सुनों अभय होना किसी से इस लोक परलोक में भय न करना तात्पर्य पापात्मा कूं भय हुआ करता है १ अन्तः करण कूं भले प्रकार शुद्ध करना २ ब्रह्मज्ञान का जो उपाय उसमें लगे रहना ३ दान करना यथा शक्ति कुछ अपने पास न हो तो अभय दान देना ४ इन्द्रियों कूं अपने अपने विषयों से रोकना ५ द्रव्य यज्ञ चान्द्रायण व्रतादि तप यज्ञ उपयज्ञ पढ़ना पाठ करना यो यज्ञ चित्त वृत्ति निरोध योग यज्ञ ऐसे ऐसे यज्ञ से लगाकर ज्ञान यज्ञ पर्यन्त जैसा अपने कूं अधिकार हो करते रहना ६ वेद शास्त्रों का नित्य पढ़ना पाठ करना ७

अपने धर्म का अनुष्ठान करना ८ कोमलता ९ अहिं-सा १० सत्य बोलना जो प्रत्यक्षादि प्रमाण करके भले प्रकार सिद्ध करलिया है ११ क्रोध न करना तात्काल प-श्चात्काल केवल दुःख का हेतु है जिस समय क्रोध आवे वो क्षमा किसी प्रकार बितावे पीछे बिचारे जो उस समय में ऐसा कहता करता तो क्या होता १२ त्याग करना १३ चित्त कूं शान्त करना १४ पीछे किसी के अवगुण नहीं कहते लिखा है कि जो किया हुआ अवगुण किसी का क-हे तो बराबर का पापी होता है और जो कुछ भला कर बढ़ा कर कहे तो दूना पापी होता है जो अपने सामने किसी के अवगुण कहे प्रथम उसी कूं पापी जाने १५ दया अर्थात किसी कूं दुःख न देना और जो बने तो दूसरे का निवर्त्त कर देना १६ लोलुप्त न होना अर्थात कुछ पदार्थ के लिये पामरों के सामने दीनता न करनी १७ क्रूर कठोर चित्त न होना १८ खोटे कामों में लोक लज्जा रखनी वहां यो न समझना कि मेरे निन्दा स्तुति मान अपमान बराबर हैं १९ चपल न होना अर्थात वृथा क्रिया न करनी २० तेजस्वी रहना राजा आदि के छाया में न दबना जैसे और आदमी हैं ऐसे वे भी हैं २१ क्षमा २२ धैर्य सत्वगुणी अर्थात दुःख सुख भूक प्यास लाभ हान्यादि में चित्त कूं स्थिर करना २३ शोच २४ किसी से द्रोह न करना २५ चारगुण सम्पादन

करने से चित्त प्रसन्न होजाता है चित्त के प्रसन्न होने से समस्त दुःख नाश होजाते हैं ॥ जोकि आपसे जाति विद्या में बड़े हैं उनसे द्वेष न करना १ बराबर वालों से मित्रता रखनी २ छोटों पर दया करुणा करनी ३ पापी चोर जारों की उपेक्षा करनी ४ आत्मा के विषय पूजा को अभिमान न रखना कि हम पूजा के योग्य हैं ॥ जो दैवी सम्पत को मुख्य है उसमें ये गुण स्वभाव करके रहते हैं। जिसमें ये गुण होंगे वो निश्चय मुक्त होवेगा और आसुरी सम्पत के अवगुण दंभ दर्प काम क्रोध लोभादि बहुत हैं गीता शास्त्र में लिखे हैं कुछ थोड़े से इस ग्रन्थ में भी नवे अध्याय में लिखे हैं वे बन्ध के लिये हैं जिसकूं मुक्त होना है वहां से निश्चय करके उनसे बर्जित रहै दैवी सम्पत के अनुष्ठान करने से आसुरी सम्पत का तिरस्कार होजाता है आसुरी सम्पत के बर्जने से दैवी सम्पत के गुणों का अनुष्ठान होजाता है ॥ जो लक्षण स्वभाव से ज्ञानी के रहते हैं और साधक कूं प्रयत्न करने से सिद्ध होते हैं उनकूं इस प्रश्न के उत्तर में लिखते हैं। प्रश्न। कैसे पुरुषकूं लोग ज्ञानी कहते हैं १ और कैसे वो ज्ञानी बोलता है २ बैठता है ३ चलता है ४ । उत्तर। जिस काल में यो पुरुष जितनी मन में बासना है सबकूं त्याग करके निजानन्द करके तुष्ट रहता है दुःखों में दुःख सुख में सुख नहीं

मानता दूर होगये हैं भय राग क्रोध जिसके उसकूं ज्ञानी कहते हैं १ शुभ अशुभ को प्राप्त होकर किसी जगे प्रीति नहीं करता प्रियकूं प्राप्त होकर हर्ष नहीं करता अप्रिय कूं प्राप्त होकर शोक नहीं करता साक्षी हुआ बोलता है २ मुक्ति में यत्नकरने वाले बिचारवान् के मनकूं भी जो इन्द्रिय हरलेते हैं उन सब इन्द्रियों कूं रोककर परमेश्वर परायण हुआ बैठा रहता है ३ सारी कामना का त्याग करके निर्मान हुआ और जो कामना फिर प्राप्त हों उन में ममता इच्छा नहीं करता हुआ निरहंकार हुआ बि-चरता रहता है ४ फिर भी ज्ञानी का लक्षण और प्रकार करके सुनो यो ज्ञानी का लक्षण स्वसंवेद और परवेद भी है उदासीनवत् स्थित हुआ ॥

टी॰। उदासीनवत् लिखने में यो शंका है कि उदासीन-ही क्यों न कहा समाधान यो है दो मनुष्य झगड़ा करने वालों में कोई तीसरा भी उदासीन चला आवे वो देखता रहे वो चला जावे तो झगड़े करनेवालों की कुछ हानि नहीं होती परंतु आत्मा उदासीनवत् तीन गुणों के झगड़े का द्रष्टा है जो चला जावे अर्थात् उनका अभिमान छोड़ दे तो झगड़े करनेवाले भी नहीं रहते इसलिये उदासीनवत् कहा ॥

मू॰। गुणों करके नहीं बिचलता है यो बिचारता रहता है कि गुणावर्त्त रहे हैं समान है पाषाण सोना निंदा स्तुति

मित्र शत्रु मान अपमान जिसके सारे आरम्भों के त्याग करने का स्वभाव है जिसका उसकूं ज्ञानी गुणातीतस्थित मग्न कहते हैं और जो ज्ञानी का केवल स्वसंवेद लक्षण है ॥ सत्वगुण का जो कार्य प्रकाशादि रजोगुण का जो कार्य प्रवृत्ति आदि तमोगुण का जो कार्य मोहादि जो अपने आप प्रारब्ध के बलसे प्राप्त हों तब कुछ हर्ष शोक नहीं करता जो निवृत्त होजावे तब कुछ हर्ष शोक नहीं करता मुक्ति की इच्छावाले के तो सत्वगुण में राग हर्ष और रज तमोगुण में द्वेष शोक होता है ऐसे २ साधन गीता शास्त्रादि में बहुत लिखे हैं तात्पर्य यो है जैसे बने शरीर इन्द्रिय प्राण अंतःकरण कूं नित्य प्रति दिन सिवाय २ अभ्यास करके निरोध करे वशिष्ठजी कहते हैं। जैसे बने हाथ से हाथ दांत से दांत मलकर हाहा कारादि शब्द करके मनकूं वशकरे विषयाकार अन्तःकरण की वृत्ति सूक्ष्म करने से जो अपना स्वरूप हुआ, हुआ नहीं प्रतीत होता सो स्वरूप ज्ञान द्वारा अपरोक्ष होजाता है हुई वस्तु न प्रतीत होती हो इसमें दृष्टान्त कहते हैं जैसे १० लड़कों में पढ़ता हुआ किसी का लड़का उस लड़के का शब्द बाहर से पृथक् भले प्रकार नहीं प्रतीत होता अर्थात् उसकूं उसका पिता दूसरेसे यो नहीं कह सक्ता कि यो मेरा लड़का पढ़ता है ऐसेही जिसके इन्द्रियादि अपने।

अपने विषयों में प्रवर्त्त हो रहे हों उसकूं ज्ञान होनो कठि-
न है जैसे जो वे ६ लड़के पढ़ने से चुप होजावें अथवा १
शनैः शनैः पढ़ैं और वो लड़का अपने स्वभाव के अनु-
सार पढ़ता रहै तब लड़के का शब्द निश्चय होसक्ता है
ऐसेही जो विषयाकार अंतःकरण की वृत्ति सूक्ष्म होजावे
तब अपना स्वरूप भले प्रकार प्रतीत होसक्ता है इस
लिये अवश्य अन्तःकरण की वृत्ति सूक्ष्म करदेनी यो-
ग्य हैं इन्द्रियों के रोकने से अन्तःकरण की वृत्ति सूक्ष्म १
होती हैं इसमें भी दृष्टान्त कहते हैं जैसे किसी तालाव में
दश मूल लग रही हों उसकूं जो सुकाना हो तो प्रथम मूल
बन्द करे फिर सूर्य के तपने से तालाव सूक जाता है ऐसे
प्रथम इन्द्रियों कूं निरोध करे फिर विचाररूप सूर्य तपावे
इस प्रकार अन्तःकरण की वृत्ति सूक्ष्म होसक्ती है भला
इस बात की परीक्षा के लिये प्रथम महीना भरतो ऐसा
अभ्यास कर देखो कितना भेद पड़ता है जिसके अभ्यास
करने से नित्य प्रति दिन उसका फल करामलकवत् प्र-
तीत होता हो फिर उसकूं न करो तो कहो उस से सिवाय
और कौन पशु है ॥ अन्तःकरण की वृत्तियों का सूक्ष्म
होजाना इसी कूं मनोनाश कहते है ऐसे २ साधनों कर के
युक्त जो पुरुष सो ज्ञानद्वारा अनायास निरतिशयानंद कूं
प्राप्त होता है - इति श्री आनन्दाऽमृत वर्षिणी चतुर्थोऽध्यायः

अथ पंचमोऽध्यायः

सत्त्वगुण के बढ़ाने से रजोगुण तमोगुण के कम करने से ज्ञानद्वारा अपने स्वरूप की प्राप्ति होती है इसलिये सत्त्वगुण के बढ़ाने, रज तमोगुण कम करने के लिये तीनों गुणों का लक्षण लिखते हैं जिस प्रकार ये तीनों गुण देह के विषय आत्मा कूं बन्धन करते हैं सो सुनो सत्त्वगुण निर्मल होनेसे प्रकाशक शान्त रूप है कोई उपद्रव उसमें नहीं शान्त रूप होने से जो अपना कार्य सुख उसके साथ बन्धन करता है और प्रकाशक होने से प्रकाशक का कार्य जो ज्ञान उसके साथ आत्मा कूं बन्धन करता है मैं सुखी मैं ज्ञानी ये मनके धर्म हैं आत्मा में जोड़ देता है रजोगुण का कार्य और बंधन प्रकार लिखते हैं रजोगुण रागात्मक अर्थात् राग है आत्मा स्वरूप जिसका और तृष्णा संग की उत्पत्ति है जिससे सो रजोगुण आत्मा कूं कर्मों में संग आ॰ टी॰। जो वस्तु प्राप्त नहीं उसमें अभिलाषा रहनी तृष्णा प्राप्त वस्तु में विशेष आशक्ति होनी संग ॥

मू॰। शक्ति करके बन्धन करता रहे तमोगुण तम रूप है सब शरीरियों कूं मोह करनेवाला है सो तमोगुण प्रमाद निन्द्रा आलस्यादि करके बन्धन करता है सत्त्व आदि अपने २ आविर्भाव में जो करते हैं उनकी शक्ति कूं।

दिखलाते हैं जिस समय रज तमोगुण कूं तिरोभाव करके सत्त्वगुण आविर्भाव होता है सो सत्त्व दुःख ओकादि के कारण हुए सन्ते भी सुख के अभिमुख कर देता है रजोगुण सुखादि के कारण हुए सन्ते भी कामों में लगा देता हैं तमोगुण शास्त्र जन्य ज्ञान कूं ढक करके सुखादि के कारण हुए सन्ते भी प्रमादादि में जोड़ देता है महत पुरुष पूर्व संस्कार से मिले भी उन्होंने उपदेश भी किया उपदेश समय चित्त प्रमाद में लगा रहा जिस हेतु से वोही तमोगुण है महात्मा ने जो कहा उस अर्थ कूं न धारण किया जिस हेतु से वोही प्रमाद है यो नियम है कि जब सत्त्व का आविर्भाव होता है तब रज तम तिरोभाव होजाते हैं जब रजोगुण का आविर्भाव होता है तब सत्त्व तम तिरोभाव होजाते हैं जब तमोगुण का आविर्भाव होता है तब सत्त्व रज तिरोभाव होजाते हैं जिस काल में सत्त्वादि देह में बढ़ रहते हैं उनका स्वरूप लिखते हैं इस शरीर के सारे द्वारों में जिस समय प्रकाश होता है और अन्तःकरण में सुख का आविर्भाव होता है इस चिन्ह से जानना कि अब सत्त्वगुण बढ़ा हुआ है ऐसेही लोभ प्रवृत्ति कर्मों का आरम्भ अंश अस्पृहा ऐसे ऐसे चिन्ह करके जाने कि अब रजोगुण बढ़ रहा है और अप्रकाश अप्रवृत्ति प्रमाद मोहादि के आविर्भाव में

यो जाने कि अब तमोगुण बढ़ रहा है अन्त काल में जो सत्त्वगुणादि का आविर्भाव होतो क्या २ फल होता है सोई लिखते हैं जो अन्त काल में सत्त्वगुण बढ़ा होवे तो यो देह धारी जीव इस देह कूं त्याग करके जो कि मुख्य लोक हैं जहां मल नहीं है सुख भोगने के स्थान हैं उन-कूं प्राप्त होता है और रजोगुण में मर करके कर्म संगी मनुष्यों में उत्पन्न होता है तमोगुण में मर करके पशु आदि मूढ़ योनि में उत्पन्न होता है जिस हेतु से इस शरीर में अपने आप सत्त्वादि गुण आविर्भाव होते हैं उसका कारण कहते हैं निर्मल फल जो ज्ञान सुख सो पिछले सत्त्वगुणी कर्म का फल है रजोगुणी कर्म का फल दुःखादि है तमोगुणी कर्म का फल अज्ञानादि है सत्त्व गुण से ज्ञानादि होते हैं रजोगुण से लोभादि होते हैं प्रमाद मोहादि तमोगुण से होते हैं सत्त्वगुणी आदि पुरुषों कूं देह के पीछे क्या फल होता है प्रथम तो यो कहा था अन्त काल में जो गुण बढ़ा होवे उसका ऐसा ऐसा फल होता है यहां तारतम्यता का विचार है जो सत्त्वगुणी हैं वे अपने गुण की तारतम्यता से ऊपर के लोकूं कूं प्राप्त होंगे जैसे इस लोक में ब्राह्मण क्षत्री वैश्य शूद्रादि की और राजा मंत्री आदि की तारतम्यता है ऐसे ही ऊपर भी देवता गन्धर्वादि ब्रह्मलोकादि लोकों की

तार तम्यता है जितनी यहां मनुष्य लोक में जिसके २ सत्त्वगुण की वृत्ति सिवाय रही है वो उसी तरह से ऊपर के लोकूं कूं प्राप्त होगा इसी प्रकार जो गुणी मनुष्य लोक में ब्राह्मण और चक्रवर्त्ति राजा से लगाकर चांडाल २ कंगाल पर्यन्त उत्पन्न होवेगा और तमोगुणी पशु आदि योनियों में अर्थात् कीट सर्पादि से लेकर गौ ईस्वरादि पर्यन्त योनियों में उत्पन्न होवेगा और जो ज्ञानी है वे गुणातीत हैं मुक्त होवेगा वो यो जानता है कि मैं इन गुणों से पृथक् हूं गुणाही कर्ता है मैं अकर्ता हूं गुणों का द्रष्टा २ साक्षी हूं परमेश्वर कहते हैं गुणातीत मेरे भावकूं प्राप्त होवेगा तात्पर्य मुक्त होवेगा ॥ देवता की पूजा करने और यज्ञ दान तपादि करने से अन्न के खाने से ऐसी २ बहुत बातें हैं सत्त्वादि की परीक्षा होती है तात्पर्य जो सत्त्वगुणी देवता की पूजा करे तो जानना कि यो सत्त्वगुणी है ऐसेही रज तमोगुण की कल्पना कर लेनी और ऐसेही यज्ञ दानादि में समझ लेना सत्त्वगुणी पूजा दानादि २ करने से सत्त्वगुण बढ़ता है इसलिये रजोगुणी तमोगुणी सम्बन्धी पूजादि त्याग देने के लिये सत्त्वगुणी सम्बंधी पूजादि सेवन करने के लिये पूजादि कूं सत्त्व रज तमोगुण २ भेद करके लिखते हैं ॥ ब्रह्मा, बिस्नु, महेश, सूर्य, शक्ति, गणेशआदि के यजन करने वाले सत्त्वगुणी हैं यक्षादि के

यजन करनेवाले रजोगुणी हैं भूत प्रेतादि के यजन करने
वाले तमोगुणी हैं रजोगुणी तमोगुणी ऐसा ऐसा तप
करतेहैं कि शास्त्र में तो उसका विधान नहीं और प्राणि-
यों कूं भयका देनेवाला घोर शरीर कूं खेद करनेवाला मूर्ख
तथा पाखंड करके ऐसा तप करतेहैं हेतु उसका योहै कि
काम राग दम्भ अहंकारादि करके युक्त हैं जैसे कि नास्ति-
का ऽदि के व्रतादि हैं इस समय में बहुत प्रसिद्ध हैं लक्षण
उनके श्री तुलसी दासजीने रामायण में लिखे हैं तात्पर्य
जो शास्त्र ने नहीं विधान किया सो पाखण्ड है शास्त्र
की बिधि से करना तप आदि सत्त्व गुणी हैं ॥ भोजन
का भेद कहते हैं ॥ रसवाला अन्न घृत शर्करा करके
युक्त और भोजन के पीछे शरीर में अपने रस करके चिरका-
ल स्थिर रहे और स्निग्ध कोमलतर और जिस के देखने से
चित्त प्रसन्न होजावे देखतेही मन अंगीकार करलेवे ऐ-
सा अन्न अवस्था उत्साह शक्ति आरोग्य का बढ़ानेवा-
ला सत्त्वगुणी कूं प्रियहै यज्ञ में ऐसा अन्न देना योग्य है १
अति कटु अम्ल लवण उष्ण तीक्ष्ण रूक्ष और दाह करने
वाला ऐसा अन्न दुःख शोक रोग का बढ़ाने वालाहै और
भोजन के पीछे भी दुर्मन करनेवाला रजोगुणी कूं प्रियहै
अति शब्द सबके साथ जोड़ देना २ जिसकूं बने हुए पहर
बीत जावें और गत रस ठंढा होजावे और जिसमें दुर्गन्धि

आवे बासी जूंठा शास्त्र करके निंदित ऐसा अन्न तमोगुणी है ३ यज्ञ का भेद कहते हैं ॥ फल की इच्छा नहीं है जिन्हों के योंही विचार करके कि यज्ञ करना वेद विहित है हमकूं करना योग्य है इस प्रकार मनकूं समाधान करके जो यज्ञ करते हैं सो यज्ञ सत्त्वगुणी है १ फलका उद्देश करके दंभ करके जो यज्ञ करते हैं सो रजोगुणी है २ शास्त्र विधि करके हीन रजोगुणी तमोगुणी अन्न है जिस यज्ञ में मंत्र दक्षिणा करके हीन श्रद्धा करके रहित जो यज्ञ सो तमोगुणी है ३ तपकूं आगे सत्त्वादि भेद करके लिखेंगे प्रथम तपकूं मन बाणी शरीर भेद करके लिखते हैं ॥ देवता ब्राह्मण गुरु और कोई महात्मा उनका पूजन करना कोमल रहना हिंसा न करनी पवित्र ब्रह्मचर्य रहना इसकूं शारीरिक तप कहते हैं १ मैथुन के आठ अंग हैं सबसे वर्जित रहना इसका नाम ब्रह्मचर्य है ॥ राग बुद्धि करके स्त्री का स्मरण करना १ कीर्तन करना २ हांसी चोहल करना ३ भले प्रकार दृष्टि जमाकर देखना ४ गुप्त एकांत में बात करनी ५ मन में संकल्प करना कि यो कैसे प्राप्त हो ६ यो निश्चय करना कि हम इससे संग करेंगे ७ साक्षात् भ्रष्ट होजाना ८ राग पद सबके साथ जोड़ देना ॥ ऐसा बचन बोलना दूसरे कूं उद्वेग न करने सत्य हो उसकूं प्यारा लगे परिणाम में सुख का करने वाला योड़े अक्षरों

में कहना वेद शास्त्र के पढ़ने पाठ का अभ्यास रखना इसकूं वाणी का तप कहते हैं २ मनकी प्रसन्नता अक्रूरता मनन करना मनकूं विषयों से निरोध करना व्यवहार में माया न करनी इसकूं मानस्तप कहते हैं ३ इस तीन प्रकार के तपकूं सात्त्विकादि भेदकरके तीन प्रकार का कहते हैं ॥ एकाग्र चित्त करके फल की इच्छा न करके परम श्रद्धा करके ऐसा जो तीन प्रकार का तप कियाहै इसकूं सात्त्विकी कहते हैं १ जिन्होंने सत्कार के लिये किये साधु है मान और पूजा के लिये दंभ करके जो तप किया है सो अनित्य होने से रजोगुणी है २ बिना विवेक के दुराग्रह करके आत्मा कूं पीड़ा करके अथवा दूसरे के नाशके लिये जो तप करते हैं सो तमोगुणी है ३ दान का भेद कहते हैं हमकूं देना योग्य है इस बुद्धि करके सुन्दर देश काल में अनुपकारी सुपात्रों कूं जो दान देना सो सत्त्वगुणी १ जो प्रत्युपकारी कूं वा फल का उद्देश करके वा चित्त में क्लेश करके जो दान देना सो रजोगुणी २ अपात्रों कूं वा अदेश अकाल में देना और जो सुपात्रों कूं भी देना तो असत्कार अवज्ञा करके देना यो दान तमोगुणी है ३ कर्म का भेद कहते हैं ॥ फल की इच्छा न करके या विचार कर कि कर्म करना वेद शास्त्र की आज्ञा है नित्य करना चाहिये राग द्वेष के बिना अभिनिवेश न रखकर

जो कर्म किया है सो सत्त्वगुणी १ फलकी इच्छा करके अहंकार करके बहुत आयास करके जो कर्म किया सो रजोगुणी २ पश्चात् भावी धनादि का व्यय हिंसा अपना बल इनकूं नहीं विचार करके केवल मोह से जो कर्म का आरम्भ करना सो कर्म तमोगुणी ३ कर्त्ता का भेद कहते हैं ४ त्याग दिया है अभिनिवेश कर्म में जिसने और गर्व की जो बात बोलनी उससे रहित धीर्य उत्साह वाला। कर्म की सिद्धि असिद्धि में निर्विकार ऐसा कर्म कर्त्ता सत्त्वगुणी १ रागी फल की इच्छा वाला लोभी हिंसात्मक अपवित्र हर्ष शोक करके युक्त ऐसा कर्म कर्त्ता। रजोगुणी २ प्राकृत अनम्र अवगुण की शक्ति कूं छिपाने वाला आलस्य स्वभाव वाला शोक शील दीर्घ। सूत्री अर्थात् घड़ी के काम कूं महीना लगावे ऐसा कर्म कर्त्ता तमोगुणी ३ सुख का भेद कहते हैं ४ तम रजोगुणी वृत्तियों का निरोध कर कर जो सत्त्वगुण बढ़ता है कार्य उसका शांति संतोष निर्वैरता बे चाह को भजता ऽ दि। है उस काल में जो अंतः करण में सुख होता है सो सत्त्वगुणी है प्रथम अन्तः करण निरोध के समय तो यो विष की सदृश प्रतीत होता है परन्तु थोड़े दिनों तक। पीछे तो सदा अमृत की सदृश है १ इन्द्रियों का विषयों के साथ संबन्ध होने से अर्थात् खाने देखने मैथुनादि से

जो सुख होता है सो रजोगुणी उस क्षण में तो अमृत की सदृश प्रतीत होता है पीछे तो विषकी सदृश है ॥ निद्रा आलस्य मनो राज्यादि से जो सुख होता है सो तमोगुणी वह इस लोक का न परलोक का केवल आत्मा कूं मोहने वाला है ॥ तात्पर्य इस लोक स्वर्गादि में वा देवताओं में ऐसा कोई नहीं एक शुद्ध प्रत्यगात्मा के बिना कि जो इन गुणों से रहित हो ॥ त्याग ज्ञान बुद्धि धीर्य श्रद्धादि सत्त्वादि भेद से गीता शास्त्र में भले प्रकार लिखे हैं और जितना भेद ऊपर लिखा है उनका भी अर्थ गीतादि के श्रवण से निश्चय हो सक्ता है जितनी वेद शास्त्रों की आज्ञा है कि यो करना यो न करना सबका तात्पर्य यो है कि जिस के करने से रज तमोगुण बढ़ते हैं वह काम न करना और जिसके करने से सत्त्वगुण बढ़ता है वह काम करना बुद्धिमान को बिचारना चाहिये कि प्रातःकालादि स्नान ध्यानादि करने से रज तमोगुण का नाश होता है वा नहीं जो जाने कि होता है तो सदा जैसे बने वैसे ही शास्त्र विहित कर्मों को करना योग्य है जिस काल में रज तमोगुण की वृत्तियों का तिरस्कार और सत्त्वगुण की वृत्तियों का आविर्भाव भले प्रकार हो जावेगा उस काल में यो मेरे कूं करना योग्य है यो अयोग्य है यो रस्ता बन्ध दुःखादि का है यो रस्ता सुख मुक्ति का है सब जान जावेगा और वशिष्ट

व्यासादि कूं जो यो समर्थ है सब भूत भविष्यत काल की व्यवस्था कह देनी यो सत्त्वगुण का प्रताप है जिस के। जितना सिवाय सत्त्वगुण होगा उसके उतनाही सिवाय प्रकाश होगा तात्पर्य सत्त्वगुण के बढ़ाने से सिद्धि। स्वर्ग लक्ष्मी आदि भी प्राप्त होनी बहुत सहज है और सत्त्व गुण के बढ़ने से ज्ञानद्वारा मुक्त हो जाता है यो मुख्य फल है ॥ इति श्री आनंदाऽमृत वर्षिणी पञ्चमोऽध्यायः ५

अथ षष्ठोऽध्यायः

प्रथम साधन अवस्था में कर्म उपासना करनी योग्य है ज्ञान में समुच्चय न करना अर्थात् कर्म उपासना ज्ञान। तीनों मिलकर मुक्ति होती है ऐसा न विचारना श्री शंकराचार्य महाराज ने गीता भाष्यादि ग्रन्थों में सब समुच्चय का खंडन भले प्रकार प्रमाण पूर्वक किया है तात्पर्य इस बात कूं सिद्ध किया है केवल ज्ञान से मुक्ति होती है ज्ञान कूं कर्म उपासना की इच्छा नहीं कर्म उपासना कूं ज्ञान की इच्छा है तात्पर्य बिना ज्ञान कर्म उपासना से मुक्ति नहीं होती यहां भी इसी बात कूं सिद्ध करते हैं केवल ज्ञान से मुक्ति होती है शंका। तप योग यज्ञ स्नान व्रतादि का फल मुक्ति सुना। जाता है उनकी क्या गति होगी। उत्तर। तप योगादि परम्परा करके मुक्ति के साधन हैं ज्ञान तो साक्षात स्वतंत्र मुक्ति

का साधन है योही बात श्री रामचन्द्र जी ने भी लक्ष्मणजी के प्रति राम गीता में कही है वेजो कर्म उपासना वाले केवल कर्म उपासना से मुक्ति कहते हैं उनसे बूझना योग्य कि वेद की हज़ारों श्रुति द्वैत पर हैं उसकी क्या गति है। कर्म उपासना वाले जो बूझें कर्म उपासना पर जो हज़ारों श्रुति हैं उनकी क्या गति है इस प्रश्न के उत्तर में ब्रह्मवादी तो यो कहते हैं कि कर्म करने से अन्तःकरण शुद्ध होता है उपासना से चित्त की एकाग्रता होती है यो उनका परम प्रयोजन है फिर ज्ञानद्वारा मुक्ति होती है तदुक्तम्। कर्म से विरति योगसे ज्ञाना ज्ञान से मोक्ष पद वेद बखाना। यो शास्त्रार्थ दिग्विजय शारीरक भाष्यादि ग्रन्थों में। बहुत है जो बहुत चर्चा करे वह उन ग्रन्थों का श्रवण करे यहां सिद्धान्त लिखते हैं केवल ज्ञान मुक्ति का साधन है उसमें यो दृष्टान्त है जैसे पाक क्रिया में लकड़ी जल बर्तनादि परम्परा करके गौण साधन है ऐसेही कर्म उपासना मुक्ति के गौण साधन है ज्ञान तो साक्षात् मुक्ति का साधन है जो ऐसी शंका करे पाक क्रिया में अग्नि गौण रहा जल बर्तनादि मुख्य हैं दृष्टान्त में यो आया कर्म मुख्य है। ज्ञान गौण है उत्तर उसका यो है अविद्या और कर्म का विरोध नहीं कर्म भी जड़ अविद्या भी जड़ है अन्धकार कूं अन्धकार नहीं दूर कर सक्ता विद्या ज्ञान रूप है योही ज्ञान

अज्ञान कूं दूर कर सक्ता है जैसे प्रकाश अंधकार कूं इस। हेतु से ज्ञान गौण नहीं हो सक्ता तदुक्तम् हरा ज्ञान बक सिदे न मोहू। तुम रामहिं प्रतिकूल न होहू। शंका। कर्म गौण रहो ज्ञान मुख्य रहो उपासना कहां गई। उत्तर। जो ऐसी उपासना है कि मैं ब्रह्म हूं अर्थात् अभेद उपासना का तो ज्ञान में अन्तर्भाव है और दासोऽहम् अर्थात् भेद उपासना का कर्म में अंतर्भाव है इस प्रक्रिया में ज्ञान कर्म दोही हैं। शंका। आत्मा तो सब शरीरों में परिच्छिन्न प्रतीत होता है आत्मा कूं पूर्णता कैसे है। उत्तर। परिच्छिन्नवत् आत्मा अज्ञान से प्रतीत होता है अविद्या के नाश होने से। आत्मा पूर्ण जैसा है वैसाही प्रतीत होने लगता है जैसे। सूर्य के आगे बादल होने से वा मंदिर आदि की उपाधि से धूप परिच्छिन्न प्रतीत होती है बादल मकान की उपाधि दूर होने से पूर्ण प्रकाश होजाता है जो आत्मा जीव अज्ञान का जो कार्य देहादि में अहंबुद्धि इस करके आप कूं कर्ता भोक्ता मानकर मैला हो रहा है ज्ञान के अभ्यास से। निर्मल हो जाता है। शंका। जो ज्ञान बना रहा तो अद्वैत की असिद्धि है। उत्तर। ज्ञान के अभ्यास से प्रगट होता है जो वृत्ति ज्ञान सो अज्ञान कूं नाश करके और आत्मा कूं। निर्मल करके आप भी नाश होजाता है जैसे कत करेणू। जल के मल कूं दूर करके आप भी नाश हो जाती है। शंका।

आत्मा ज्ञान रूप है वहां अज्ञान कैसे रहा। उत्तर। ज्ञान स्वरूप आत्मा अज्ञान का विरोधि नहीं वृत्ति ज्ञान अज्ञान का विरोधि है जैसे बांस में अग्नि रहती है परंतु उसकी विरोधि नहीं मथन करने से उत्पन्न होती है जो अग्नि सो विरोधि है। शंका। यो संसार प्रत्यक्ष दीखता है इसकूं झूंठा कैसे कहते हो। उत्तर। संसार स्वप्न की तुल्य है जैसे स्वप्न अपने काल में सत्यवत् प्रतीत होता है जाग्रत में असत्यवत प्रतीत होता है सत्य असत्यवत् प्रतीत होता है परमार्थ में दोनों प्रकार नहीं और जैसे देखने मैथुनादि से जाग्रत में दुःख सुख होता है वैसाही स्वप्न में दुःख सुख होता है और जैसे स्वप्न के पदार्थ अनित्य हैं वैसेही जाग्रत के पदार्थ अनित्य हैं तात्पर्य भ्रान्तिकाल में जबतक जगत सच्चा सा प्रतीत होता है कि जब तक अपना स्वरूप सच्चिदानन्द ब्रह्म से अभिन्न सबका अधिष्ठान नहीं जाना जैसे रजत की जब तक भ्रम से प्रतीत है तब तक शुक्ति के विशेषगुण नील पृष्ट त्रिकोणादि नहीं निश्चय किये सतचित रूप आत्मा में सब प्रपञ्च काल्पित है जैसे सोने में झूमके बाली आदि काल्पित हैं और जैसे घट मकानादि की उपाधि से महाकाश पृथक् २ घटाकाश मठाकाश बना वच्छिन्न हुआ वच्छिन्न आकाश कहा जाता है ऐसेही आत्मा देहों की उपाधि से परिच्छिन्न कहा जाता है और जैसे जब घट

(मकानादि)

मकानादि का नाश हो जावे तो केवल महाकाश रहजाता है ऐसे देह स्थूल अविद्या के नाश हुए आत्मा भी पूर्ण रह जाता है सत्त्व तम रजोगुणों की नाना उपाधि से जातिवर्ण आश्रमादि आत्मा में कल्प रक्खे हैं जैसे जल स्वभाव से मीठा श्वेत है उपाधि से खट्टे नमके लाल पीले की उसमें कल्पना की जाती है स्थूल सूक्ष्म कारण तीनों उपाधियों से आत्मा पृथक् जानना चाहिये जैसे शुद्ध स्फटिक रक्त पीतरंग के योग से वैसाही प्रतीत होता है जैसे धानों कूं मूसले से खोट पिछोड़ कर चावल पृथक् कर लेते हैं ऐसे पंच कोश रूपी भूसी कूं दूर करके विचार रूप जो पिछोड़ना इस युक्ति करके आत्मा कूं पंचकोश तीन शरीर से पृथक् शुद्ध जानना चाहिये ।शंका। तुम आत्मा कूं सर्वगत कहते हो सारे तो नहीं दीखता ।उत्तर। आत्मा सब काल में सर्वगत है परंतु शुद्ध बुद्धि की वृत्ति में प्रतीत होता है जैसे प्रतिबिम्ब सारे है परन्तु स्वच्छ पदार्थ दर्पण जलादि में प्रतीत होता है देह इन्द्रिय मन बुद्धि प्रकृति इनसे आत्मा विलक्षण है ये सब दृश्य हैं इनका जो द्रष्टा साक्षी सो आत्मा है ।शंका। तुम आत्मा कूं निर्विकार कहते हो आत्मा तो विकार वाला प्रतीत होता है क्योंकि मैं चलता हूं वो बोलता हूं ऐसे २ व्यापार से व्यापारी दीखता है ।उत्तर। पृथक् २ जो इंद्रिय मन प्राणादि ये पृथक् २ अपने २ विषयों में अपनी

अपनी क्रिया में जो प्रवर्त होते हैं उनके साथ आत्माभी व्यापारीवत् बिना विवेक मूर्खों कूं प्रतीत होता है जैसे बादल के चलते हुए बालक कहता है कि चन्द्र चलताहै बालक के तो योंही निश्चय है परंतु विचारवान् कूं भीभ्रांति से चन्द्र का चलना प्रतीत होता है और जैसे नाव में बैठे हुए गंगा के तीर के वृक्षादि चलते हुए प्रतीत होते हैं ऐसे आत्मा भी व्यापारीवत् प्रतीत होता है देह इन्द्रिय प्राण मनादि सब जड़ पदार्थ हैं आत्मा चैतन्य कूं आश्रय करके अपने २ अर्थ में प्रवर्त होते हैं जैसे सूर्य के निकलने से मनुष्यादि अपने २ काम में लगते हैं देह इन्द्रिय गुण कर्मादि अमल सत्चित् आत्मा में विवेक के बिना अध्यासकर रक्खे हैं जैसे आकाश में नीलता मनादि की उपाधि अर्थात् मैं कर्त्ता भोक्ता हूं ये अज्ञान से आत्मामें कल्प रक्खे हैं जैसे जलका चलना चन्द्र में कल्प रक्खा है राग इच्छा सुख दुःखादि बुद्धि के हुए हुए प्रतीत होते हैं सुषुप्ति में बुद्धि लय होजाती है वहां नहीं प्रतीत होते इसलिये रागादि बुद्धि के धर्म हैं आत्मा के नहीं जैसे सूर्य का स्वभाव प्रकाश अग्नि का उष्ण स्वभाव जलका शीत स्वभाव है ऐसे नित्य निर्मल आत्मा का सच्चिदानन्द स्वभाव है सत् चित् आनंद ये तीन पद हैं शास्त्र में ये तीनों मिलकर एक सच्चिदानंद ऐसा बोलने में आता है सत्जो

तीनों काल भूत भविष्यत् वर्तमान में एक रस बना रहता है भाषा में सत्त कूं है कहते हैं और घट पटादि में जो है यो शब्द प्रतीत होता है सो आत्मा हीका अंश है योबात दूसरे अध्याय में जहां अस्ति भांति प्रियका प्रसंग है वहां भले प्रकार सिद्धकर आये हैं और चित् चैतन्य रूप ज्ञान रूप प्रकाश रूप परन्तु ऐसा प्रकाश न समझना जैसा अग्नि सूर्यादि का है क्योंकि ये तो स्वप्न सुषुप्ति में एक भी नहीं ऐसे समझो जिसके प्रकाश से जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति के पदार्थों का भान होता है अर्थात् जिस प्रकाश करके रूपादि मनादि सुख अज्ञानादि जाने जाते हैं जाग्रत अवस्था में भी आत्मा के प्रकाश के बिना कुछ नहीं प्रतीत हो सक्ता परंतु सूर्यादि का भी प्रकाश है और स्वप्न सुषुप्ति में तो केवल आत्मा हीका प्रकाश है इसहेतु से वहां भले प्रकार प्रतीत होता है कि आत्मा का यो प्रकाश है आत्मा स्वयं प्रकाश स्वप्न में भले प्रकार प्रतीत हो सक्ता है और आनंद रूप जो कि सबसे सिवाय प्यारी बस्तु है उपनिषद में याज्ञवल्क्य मैत्रेयी का संवाद है हे मैत्रेयी धन आत्मा के लिये प्यारा पुत्र आत्मा के लिये स्त्री आत्मा के लिये तात्पर्य सब पदार्थ आत्मा के लिये प्यारे हैं जो सब पर बिपत्ति पड़े तो प्रथम अपने शरीर की रक्षा करता है और ब्रह्मानन्द के लिये शरीर इन्द्रिय प्राण का भी नाश कर देता है

इसी हेतु से प्यारा आत्मा है वोही आत्मा आनन्द रूप है
वह आनंद रूप रज तमोगुण की वृत्तियों में दब रहा है इस
आनन्द रूप का पंचदशी ग्रंथ में ब्रह्मानन्द के ५ अध्याय
हैं योगानन्द, आत्मानन्द, अद्वैतानन्द, विद्यानन्द, विषया-
नन्द, ये हैं नाम जिनके उनमें भले प्रकार निश्चय हो सक्ता है
। शंका। आत्मा तो निर्विकार है बुद्धि जड़ है मैं जान्ता हूं
यो किस का धर्म । उत्तर। आत्मा का सत्चित् अंश और
बुद्धि की वृत्ति ये दोनों जुड़कर विवेक के बिना यो व्यवहार
होता है कि मैं जान्ता हूं आत्मा कूं जीव जानकर भय कूं प्राप्त
होता है और जब यो जाने कि मैं जीव नहीं परमात्मा हूं तब
निर्भय हो जाता है जैसे जब तक रज्जु में सर्प जान्ता रहेगा
तब तक निश्चय भय रहेगा वेद बारम्बार कहते हैं जो जीव
ब्रह्म में किंचित् भी भेद करेगा उसको बड़ा भय होगा
विचारो जो जीव ब्रह्म में भेद है तो पूर्ण ब्रह्म कैसे है जो एक
से भेद हुआ तो अनेक जीव पशु पक्षी देवता यक्ष आका-
शादि से सबसे भेद हुआ तो जैसे और है ऐसे ही ब्रह्म भी
एक देशी हुवे और रामचन्द्र, कृष्णचन्द्र, विष्णु, शिवादि,
मूर्त्ति तो परमेश्वर की माया मय है वास्तव नहीं इस बात
कूं परमेश्वर ने अपने मुख से कहा है हे लक्ष्मी यो मेरा श-
रीर माया मय है सात्त्विक नहीं पद्म पुराण में गीता जी के
माहात्म्य में लक्ष्मी नारायण का सम्वाद है और गीता

शास्त्र में परमेश्वर कहते हैं मुझ अव्यक्त कूं जो व्यक्ति
वाला जान्ते हैं वे मूर्ख हैं जबकि परमेश्वर आप ऐसा क-
हते हैं कि विवाद की बात है परंतु मूर्ख अपनी मूर्खतासे
सच्चिदानन्द एक रस पूर्ण ब्रह्म कूं परिच्छिन्न एक देशी
कहेंगे अर्थात् बैकुण्ठ, कैलाश, मथुरा, अयोध्या वासी
कहेंगे और परमेश्वर के सद्भाव में ऐसी २ चर्चा करेंगे
कि कृष्णचन्द्र ने गोवर्द्धन उठालिया इस हेतु से कृष्णचंद्र
परमेश्वर हैं और जो श्रुति स्मृति युक्ति हज़ारों परमेश्वर
के सद्भाव में प्रमाण हैं कि जिन युक्तियों से नास्तिकों
के मत खण्डन किये जाते हैं जो नास्तिक वेद कूं न परमे-
श्वर कूं न परमेश्वर के वाक्यों कूं मान्ता हैं उसका मत केव-
ल युक्ति करके खण्डन होता है मूर्ख उन युक्तियों कूं तो
जान्ते नहीं ऐसी तुच्छ युक्ति देते हैं जिस कूं बालक भी खं-
डन करदे गोवर्द्धन से सिवाय कैलाश रावण ने उठालिया
है और हज़ारों राजा पुराणों में प्रसिद्ध हैं जिनके रथ के
पहिये के समुद्र बने हुए हैं, क्या वे परमेश्वर थे और परमे-
श्वर ने रावण मारा कंस मारा और अनेक जय करी यो
परमेश्वर की क्या स्तुति है अर्थात् निन्दा है क्योंकि जो
परमेश्वर करने कूं न करने कूं और का और करदेने कूं समर्थ
हैं क्या वे ऐसी २ उपाधि करके नाना प्रकार का अपने ऊपर
दुःख उठाकर औरों से सहाय ले २ जय करते तदुक्तम् । दोहा ।

प्रीति विरोध समान सन करिय नीत अस आहि। जो।
मृग पति बध मेडुकन्ह भलो कहे को ताहि॥ चौपाई॥
भवन अनेक रोम प्रतिजासू। यह प्रभुता कछु बहुत नतासू॥
सो महिमा समुझत प्रभु केरी। जो बरणत हीनता घनेरी॥
और प्रसिद्ध है कि चक्रवर्ती राजा कूं एक देश का राजा
कहना षट्शास्त्री कूं दो चार पोथी का पढ़ा हुआ कहना
चार पुत्रवाले कूं एक पुत्रवाला कहना कितना अनर्थ है
और जो यों कहो कि व्यासदेव वाल्मीकिजी आदि ने क्यों
परमेश्वर की ऐसी २ स्तुति लिखी हैं सो सुनो जो परमेश्वर
कूं सच्चिदानन्द पूर्णब्रह्म नित्य मुक्त एक रस असंग ऐसा
बिचारने कूं समर्थ नहीं योंही जान्ता है जैसे में उत्पन्न हुआ
हूं मेरे माता पिता स्त्रियादि हैं ऐसेही परमेश्वर माता पि-
ता स्त्री वाले होंगे और जैसे इस लोक में शरीर मकान उप-
बनादि सुन्दर २ जिसके होते हैं और जो शत्रुओं कूं मार २
आप जय कूं प्राप्त होता है उसकूं मूर्ख लोग बड़ा कहते हैं
इसलिये उन मूर्खों के लिये व्यासादि जीने परमेश्वर की
ऐसी २ स्तुति लिख दी और बिचारवानों के लिये वेदान्त में
जो स्वरूप परमात्मा का निश्चय किया है उसकी स्तुति लि-
खी है बिचार देखो यो कुछ विरोध की बात नहीं जब मूर्ख
भेदवादी वेदान्त की ऐसी २ युक्तियों में दब जाते हैं उत्तर
नहीं देसक्ते तब यो बकने लगते हैं अजी ज्ञान बड़ा कठिन

हे कलियुग में ज्ञान नहीं होता और जो ब्रह्मवादी ज्ञानी
विशेष करके संन्यासी हैं उनकूं कहते हैं कि कलियुगमें
संन्यास वर्जित है उनसे बूझना चाहिये श्री मत्परम हंस।
परिव्राज का चार्य श्री शंकरा चार्य महाराज शिवजी का
अवतार पद्म पाद परमेश्वरा चार्य्य हस्तामलक आनन्द
गिरीजी से आदि लेकर बहुत ग्रन्थों में प्रसिद्ध हैं और ब-
हुत से इस समय में प्रत्यक्ष हैं और श्री शंकरा चार्य महा-
राज कूं भी कोई दो हज़ार वर्ष बीते हैं जब कलियुग था वा
नहीं और जो कलियुग में शुचि ज्ञान नहीं होता तो व्यास
जीने पुराणों में इतिहासों में भले प्रकार सूत्रों में और श्री
कृष्णचन्द्र महाराज ने गीता शास्त्र में ज्ञान क्यों कहा और
प्रथम अध्याय में गीता भाष्यादि ग्रन्थों का नाम हम लि-
ख आये हैं वे ग्रन्थ उन्होंने क्यों बनाये और जो यो शंका
करे कि हरिका नाम हीं ३ मेरा जीवन है और अन्यथा क-
लियुग में नहीं है ३ गति और जो केवल बोध के लिये।
प्रयत्न करते हैं वे केवल तुष कूटते हैं ऐसे २ वाक्यों की।
क्या गति है। उत्तर। ऐसे २ वाक्य कि कलियुग में ज्ञान
नहीं होता ये वाक्य जो किसी जगे नाम माहात्म्य की प्र-
शंसा वा भक्ति की प्रशंसा वा कर्मादि की प्रशंसा में व्या-
सादि ने जो कहे हैं क्योंकि व्यासादि कवियों का यो निय-
म है जिस देवता वा भक्ति आदि की प्रशंसा करते हैं वहां

योंहीं कहते हैं कि जो है योंहीं है तो वो कहना उनका मू-
र्खों के लिये है और जो यो न माने तो ऊपर जो हमने प्रश्न
किये हैं कि उन्होंने ज्ञान क्यों कहा उसका उत्तर दो तात्पर्य
प्रथम हीं हम तीसरे अध्याय में लिख आये हैं कि मूर्ख ॥
वेद शास्त्र के एक २ देश कूं सुनकार वा अपने मतका हठ
करके वृथा वाद करते हैं बुद्धिमान को वेद शास्त्रों का सि-
द्धान्त निश्चय करना यो सिद्धान्त है कोई महात्मा यो क-
हते हैं कि हम आधे श्लोक में वो बात कहेंगे जो कोटि ग्रंथों
ने कही है सोई आधे श्लोक में कहते हैं ब्रह्म सत्य जगत्
मिथ्या है जो यो सच्चिदानन्द लक्षण वाला जीव है सोई
ब्रह्म है अपर कोई ब्रह्म नहीं योही ज्ञान मुक्ति का हेतु है॥
इति श्री आनन्दाऽमृत वर्षिणी षष्ठोऽध्यायः॥ ६ ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः

श्री शंकराचार्य महाराज ने हस्तामलकाचार्य्य से ॥
प्रश्न किया कि तुम कौन हो इसका उत्तर श्री हस्तामलका
चार्य कहते हैं मैं मनुष्य,देव,यक्ष,ब्राह्मण,क्षत्री,वैश्य,शूद्र,
ब्रह्मचारी,गृहस्थी वाणप्रस्थ,सन्यासी इनमें कोई नहीं नि-
ज बोध स्वरूप हूं फिर उन्होंने दृष्टान्त दे दे कर कृपा करके॥
जो औरों कूं भी बोध होजावे इसी अर्थ कूं सिद्ध किया हम
भी उसी अर्थ कूं संक्षेप करके इस अध्याय में लिखेंगे और

भी दृष्टान्त युक्ति लिखेंगे जैसे मनुष्यादि का व्यवहार में प्रवर्त होना इसमें निमित्त सूर्य नारायण है ऐसे देह मन प्राण बुद्धि आदि की प्रवृत्ति चेष्टा में जो निमित्त है और परमार्थ रूप करके तो कोई उपाधि दृष्टा दृश्यादि जिसमें नहीं केवल आकाशवत् पूर्ण एक रस है सो नित्य प्राप्त स्वरूप आत्मा है स्थूल सूक्ष्म कारण शरीरों पञ्च कोशों से पृथक् तीनों अवस्था का साक्षी सच्चिदानन्द रूप जो है सो आत्मा है। शंका। जैसे और पदार्थ आकाश पृथिवी आदि इन्द्रिय मन बुद्धि आदि करके निश्चय किये जाते हैं ऐसे आत्मा तो नहीं जाना जाता। उत्तर। इन्द्रिय मन बुद्धि आदि कूं आत्मा प्रकाशता है जैसे दीप घटादि कूं बुद्धि आदि जड़ पदार्थों करके आत्मा का कैसे निश्चय हो सक्ता है आत्मा तो स्वयं प्रकाश है आत्मा कूं अपने जानने में इन्द्रिय मन बुद्धि आदि की इच्छा नहीं जैसे दीपक के जानने में और दीप की इच्छा नहीं चिदाभास के अर्थ जानने के लिये प्रथम दृष्टान्त लिखते हैं महाकाश १ घटाकाश २ घट में जल ३ जलाकाश ४ ये चार दृष्टान्त हैं अब दृष्टान्त में समझो शुद्ध चेतन्य १ कूटस्थ २ अन्तःकरण ३ जीव ४ इसी का नाम चिदाभास है अर्थात् चेतन्यवत् प्रतीत हो परंतु चेतन्य के लक्षण करके रहित हो जीव का जो अधिष्ठान अर्थात् जीव जिसमें कल्पित है और कूटवत् निर्विकार ठहरा रहे सो कूटस्थ॥

जीव का लक्षण यो है अधिष्ठान जो चैतन्य और सूक्ष्म शरीर और चैतन्य की जो छाया सूक्ष्म शरीर में इन सबका संग जीव कहा जाता है ✻ और महाकाश १ घटाकाश २ अभ्राकाश ३ जलाकाश ४ ये चार दृष्टान्त हैं अब दार्ष्टान्ति में समझो शुद्ध चैतन्य १ कूटस्थ २ ईश्वर ३ जीव ४ और वोही चैतन्य ऐसे ६ प्रकार का है शुद्ध चैतन्य १ साक्षी २ प्रमातृ ३ प्रमाण ४ प्रमेय ५ फल ६ उपाधि रहित शुद्ध चैतन्य १ अविद्योपहित साक्षी २ अन्तःकरण विशिष्ट प्रमातृ ३ अन्तःकरण वृत्त्य वच्छिन्न प्रमाण ४ घटावच्छिन्न चैतन्य प्रमेय ५ अन्तःकरण वृत्त्य भिव्यक्त चैतन्य सो फल चैतन्य दृष्टान्त इसमें तालाब गूल केदार का है यो विषय भाषा में भले प्रकार नहीं लिखा जाता जो विस्तार करके लिखें भी तो इसका समझना कठिन है और जो समझ सक्ता है वो भाषा क्यों पढ़ें सुन्दर शास्त्र पढ़े सुने प्रत्यक्ष प्रमाण में और परमात्मा बुद्धि आदि का किस प्रकार तें विषय है और किस प्रकार विषय नहीं इस बात के जानने में इस विषय का जानना अवश्य चाहता है इसलिये यो विषय वेदान्त शास्त्रार्थ के जानने वालों से श्रवण करना योग्य है जो इस ग्रन्थ कूं पढ़ावें सुनावेंगे वे अवश्य इस विषय कूं भी जान्ते होंगे हमने जो प्रसंग चिदाभास के अर्थ जानने के लिये लिख दिया है ✻ जैसे मुख का आभा-

सक सुख का जनानेवाला जो दर्पण में दीखता है वो मुखसे कुछ पृथक् वस्तु नहीं ऐसे बुद्धि में जो चिदाभास है वो चैतन्य से पृथक् कुछ वस्तु नहीं उसका जो अधिष्ठान कूटस्थ रूप सो नित्य प्राप्त आत्मा है जैसे दर्पण के अभाव में आभास की हानि हुये सन्ते एक मुख प्रतीत होता है वहां कुछ भी कल्पना आभास्य आभासक दृष्टा दृश्य बिम्ब प्रतिबिम्ब की नहीं होती ऐसे ज्ञान के नाश हुये सन्ते कार्य उसका बुद्धि है बुद्धि का नाश हुये सन्ते जो निराभासक त्रिपुटी रहित वस्तु है सो आत्मा है ध्याता, ध्यान, ध्येय, प्रमाता, प्रमाण, प्रमेय, ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय, इसकूं त्रिपुटी कहते हैं मन इंद्रिय आदि से पृथक् मन इन्द्रिय आदि का आदि मन इन्द्रिय आदि करके जो अगम्य सो आत्मा है सब जीवों की बुद्धि में जो एक चैतन्य अपने आप शुद्ध रूप ऐसे भान होता है कि जैसे अनेक जल के घटों में एक सूर्य प्रतिबिम्ब करके भान होता है सो आत्मा है ॥ जैसे एक सूर्य अनेक नेत्रों कूं क्रम करके नहीं प्रकाशता ऐसे आत्मा ज्ञान स्वरूप अनेक बुद्धियों कूं क्रम करके नहीं बोधकरता। शंका। जो एक चैतन्य सब शरीरों में है तो यज्ञदत्तादि के दुःख सुख देवदत्त क्यों नहीं अनुभव करता। उत्तर। अविद्या की उपाधि से जिस शरीर में जिस जगे विशेष अध्यास है वहीं के दुःखादि अनुभव हो सक्ते हैं और जगे के नहीं हो सक्ते जैसे

जिसकूं योही निश्चय है कि इस शरीर में चैतन्य और है यज्ञ
दत्तादि के शरीरों में और चैतन्य है तो उसकूं भी एक काल
में शरीर छूटने का दुःख और पलंग पर सोने का सुख और
भी अनेक दुःख सुख अनुभव नहीं होसक्ते जिस काल में
जहां अन्तःकरण की वृत्ति होगी उसी जगे का दुःख सुख
प्रतीत होगा और जगे का नहीं होगा जो दूसरे शरीर में अ-
ध्यास होगा तो वे संदेह यज्ञदत्तादि के दुःख सुख प्रतीत हों-
गे जैसे मित्र पुत्रादि में अध्यास होता है तो उनके दुःख सुख
में जो कहता है कि मैं दुःखी सुखी हूं और यो विचारना
चाहिये कि जो प्रथम शरीर में चैतन्य था वोही इस शरीर में
है फिर पूर्व जन्म के दुःख सुख क्यों नहीं प्रतीत होते तात्पर्य
जब एक शरीर में यों व्यवस्था है जो अन्तःकरण की वृत्ति
नेत्र के साथ लगी हुई है तो रूपही का ज्ञान होता है समीप
बैठे कुछ कहा करो किंचित नहीं सुनता इसी प्रकार सब
जगे कल्पना कर लेनी हज़ार वस्तु घर में खाने पहरने देखने
की रक्खी हों जिस जगे अन्तःकरण की वृत्ति है वोही दुःख
सुख की हेतु है जबकि एक शरीर के दुःख सुख एक समय
होने वाले उनका एक काल में अनुभव नहीं होसक्ता फिर
अनेक शरीरों का कैसे दुःख सुख अनुभव होसके। शंका।
अष्टावधानी तो उत्तर देना चौसर खेलनी आदि ऐसे ऐसे
काम एक समय किया करता है और दूसरे जो एक बालिश्त

चौड़ा लम्बा खजला है उसकूं दांतों से कुतर २ जो खाता है तो शब्द स्पर्श रूपरस गन्ध उसकूं एक काल में प्रतीत होता है और तीसरे कोई कहता है कि मैं चन्द्र तारों कूं एक काल में देखता हूं इस का उत्तर दो। उत्तर। मूर्ख यो बात कहता है मैं एक काल में सब कूं अनुभव करता हूं उसकूं मन की गति की खबर नहीं मन ऐसा चंचल है एक क्षण नहीं लगने पाता-प्रथम पदार्थ कूं अनुभव करके दूसरे पदार्थ में प्रवर्त हो जाता है इस बात कूं सूक्ष्म दर्शी जानते हैं और सुनो यो प्रसिद्ध है कि वाणी आदि इन्द्रिय बिना अन्तःकरण विशिष्ट। चैतन्य के युक्त हुए किसी क्रिया में प्रवर्तन नहीं हो सक्ते देखिये पुरुष पाठ जप भी करता है और अनेक मनोराज्य भी करता है विचारना चाहिये उसके मुख से श्लोक मंत्र जो उच्चारण होता है तो चैतन्य विशिष्ट मन का वाणी के साथ संयोग है वा नहीं जो कहो कि संयोग है तो मनो राज्य कौन करता है और जो कहो संयोग नहीं तो वाणी जड़ है उस में क्रिया केसे होती है तात्पर्य व सन्देह प्रतीत होता है मन की गति बहुत चंचल है मन मनोराज्य भी किये जाता है और वाणी के साथ मिलकर उस विषय कूं भी अनुभव किये जाता है मूर्ख योहीं जान्ता है कि मेरा मन पाठ जप में नहीं लगा जिन कूं अपने मन की भी खबर नहीं उनके ऐसी ऐसी शंका। रहती हैं इस उत्तर में तीनों प्रश्न का उत्तर है ॥

श्री शंकराचार्य भगवान् कहते हैं कि यो जो जगत दीखता है यो क्या है क्या इसका रूप है यो कैसे हुआ है इसका क्या हेतु है यो बुद्धिमान को कभी नहीं चिन्तवन करना फिर क्या चिन्तवन करना चाहिये यो माया भ्रान्ति इन्द्रजाल है यों चिन्तवन करना चाहिये जैसे किसी के पैर में कांटा लग जावे तो वो यो न विचारे कि मेरे यो कांटा कौन से मुहूर्त में लगा है कौन से पेड़ का है यहां कैसे आया ऐसा २ चिन्तवन न करै जैसे बने उसके निकालने का उपाय करे ऐसेही संसार की निवृत्ति का उपाय करे ॥ जैसे एक सूर्य का प्रतिबिम्ब अनेक जल के घटों में है जो घट कूं लेकर चले तो सूर्य न तो उसके साथ जाता है न कंपता है ऐसे आत्मा ज्ञान स्वरूप शरीर इन्द्रियादि की क्रिया में वो क्रियावाला नहीं जैसे ढक गई है बादल से दृष्टि जिस की वो यों मानता है कि सूर्य छिप गये ऐसे अविद्या की उपाधि से यो पुरुष आप कूं वृथा बंधा हुआ मानता है और जैसे किसी बन्दर ने घट में हाथ डालकर दोनों हाथ में अन्न भरकर मुट्ठी बन्द करली पीछे वृथा अज्ञान से चीची किल किल करे है विचारो उसकूं किसने बन्धन किया है और सुनो कोई तोते के पकड़ने के लिये मैदान में तो चुगा डाल देता है और दो बांस खड़े करके बीच में उसके नलकी जैसी परवे में होती लगा देता है नीचे उस नलकी के किसी पात्र में जल भर

देताहै तोता चुगे के लालच आताहै प्रथम नलकी पर। आनकर बैठता है उस नलकी का नियम है उसके ऊपर। जानवर बैठा और वो फिरी और जानवर उलटा हुआ जो वो जानवर छोड़कर भागजावे तो कुशल है नहीं तो यो। हाल होता है कि जब तोता उस नलकी पर आनकर बैठा और वो फिरी तोते ने जाना यो मेरा आश्रय था जो इस कूं छोड़ दिया तो जाने कहां गिरूंगा उसकूं वो पकड़े रहा फिर उस तोते की नीचे कूं पीठ ऊपर कूं पैर होगये उसतोते ने जो जल की तरफ़ कूं देखा तो अपना प्रतिबिम्ब जलमें प्रतीत हुआ उस तोते का अध्यासन प्रतिबिम्ब में लगगया फिर वो तोता यो जान्ता है कि मैं डूब रहा हूं जल में ऊपर। का सबहाल भूल गया वृथा अज्ञान से चीची टीटी करैहै विचारो उसकूं किसने बंधन किया है ऐसे यो कूटस्थ चै- तन्य रूप अपने प्रतिबिम्ब चिराभास से अध्यास करके बंधनवत हो रहा है वास्तव बंधनहीं ✻ सबजगेजैसे आ- काश अनस्यूतहै ऐसे आत्मा बाहर भीतर स्वच्छ रूप अनस्यूत है किसी वस्तु कूं स्पर्श नहीं करता ✻ औरजैसे स्वेत मणि रंग की संनिधि होने से लाल पीली प्रतीतहो- ती है ऐसे आत्मा अविद्या की उपाधि से करता भोक्ता। प्रतीत होता है ✻ समस्त स्थूल सूक्ष्म उपाधि कूं नेतिनेति इस वाक्य से निषेध करके जैसे दूसरे अध्याय में जीव।

ब्रह्म की एकता महा वाक्य करके करी है सदा वोही चिंत-
वन करना चाहिये प्रथम तत्त्वं पदों का अर्थ लिख भी आये
हैं फिर भी और प्रकार करके सुनो कोई मुक्ति की इच्छा वा-
ला तीन ताप जो संसार में हैं उन करके तपा हुआ और ॥
टी०। ज्वर क्रोधादि करके जो ताप सो आध्यात्मिक १
शत्रु चोर व्याघ्रादि करके जो ताप सो अधिभौतिक २।
शीतोष्ण पवनादि करके जो ताप सो आधिदैव ३ ॥
मू०। संसार से उद्विग्न हुआ है मन जिसका शम दमादि
साधनों करके युक्त सद्गुरु से बूझता है हे भगवन् जिस
साधन करके अनायास पूर्वक संसार रूप बंधन से मैं छूट
जाऊं सो महाराज मुझ कूं संक्षेप करके केवल कृपा कर-
के कहो। उत्तर। हे साधो तुमने बहुत अच्छा बूझा साव-
धान मति होकर सुनो तत्त्वमसि महा वाक्यादि से उत्पन्न
हुआ जो जीव ब्रह्म का तादात्म्य विषय ज्ञान सो मुक्ति।
का कारण है। प्रश्न। महाराज कौन जीव कौन ब्रह्म है।
किस प्रकार करके उनकी तादात्म्यता है और महावाक्य
किस प्रकार करके उसको प्रति पादन करते हैं। उत्तर।
जीव कौन है तूही जीव है और जो बूझता है कि मैं कौन
हूं तूही वे संदेह ब्रह्म है। प्रश्न। हे भगवन् अब तक तो मैंने
भले प्रकार पदार्थ भी नहीं जाना मैं ब्रह्म हूं यो जो महा।
वाक्यार्थ इसकूं कैसे प्राप्त हूं। उत्तर। सत्य कहते हो।

वाक्यार्थ के ज्ञान में प्रथम पदार्थ का ज्ञान हेतु है इसलिये प्रथम तत्त्वम् पद का अर्थ सुनो अन्तःकरण और उसकी वृत्तियों का जो साक्षी चैतन्य छल नित्य एकरस और देहादि में जो अहंबुद्धि इसकूं त्याग करके आत्मारूप करके। जो चिन्तवन करने में आता है सो आत्मा त्वम् पद का अर्थ यो शरीर रूपादि वाला होने से आत्मा नहीं जैसे पञ्च महा भूतों का बिकार घटादि हैं ऐसेही प्रत्यक्ष बिकार। वाला होने से देह भी है। प्रश्न। जो देह अनात्मा है तो हे भगवन् आत्मा कूं करामलकवत् साक्षात प्रति पादन करो। उत्तर। जैसे घट का देखने वाला घट से पृथक् होता ऐसे देह का देखने वाला देह कैसे होगा और जैसे मकान में बैठा हुआ कोई यो कहे मैं मकान हूं तो बिचारो कैसी मूर्खता की बात है ऐसे यो चैतन्यरूप असंग निरवयव है और कहे कि मैं देह हूं अर्थात पुरुष स्त्री ब्राह्मणादि हूं बिचारो इस से परे और क्या अज्ञान होगा देह तो उपलक्षण हैं प्राण इन्द्रिय मन बुद्धि आदि दृश्य होने से सब। अनात्मा है सबका जो दृष्टा सो आत्मा है देह से परे इन्द्रिय, इन्द्रियों से परे मन, मन से परे बुद्धि, बुद्धि से परे जो बुद्धि का साक्षी सो आत्मा, आत्मा से किंचित् नहीं और सब संघात भी आत्मा नहीं हो सक्ता क्योंकि दृष्टा दृश्य बिलक्षण होते हैं देह इन्द्रियादि की जो चेष्टा क्रिया में सदा।

उपचय अपचय वाली हैं कभी किसी प्रकार का शरीर।
कभी किसी प्रकार की इन्द्रिय मनादि की चेष्टा देखने में
आती है कभी किसी प्रकार की जिसकी संनिधि मात्र
से ये सब चेष्टा करते हैं एकरस जो इनका द्रष्टा सो आत्मा
है जड़ पदार्थ देहादि जिसकी संनिधि से चेतन्यवत् प्रतीत
होते हैं जैसे चुम्बक की संनिधि से लोहा सो आत्मा है मेरा
मन इस समय कहीं गया अब मैंने स्थिर किया इस वृत्ति
कूं जो जान्ता है सो आत्मा है जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति का होना
न होना इसकूं निर्विकार हुआ जो जान्ता है सो आत्मा है
जैसे घटका आभासक दीप घट से पृथक् है ऐसे देहादि का
आभासक देही पृथक् है देह स्त्री पुत्र मकानादि के नष्ट।
होते २ जो आप कूं परम प्रेम का आस्पद प्रतीत होता है।
सोई आत्मा है जैसे सूर्य पाप पुराय का साक्षी असंग नि-
र्विकार है इसी प्रकार साक्षी चैतन्य रूप निराकार आत्मा
है और ये ६ विकार देह के हैं जायते अस्ति वर्द्धते विपरि-
णमते अपक्षीयते विनश्यति देह इन्द्रिय प्राण मन बुद्धि
अज्ञान का लक्षीत्वम् पदका वाच्यार्थ है अब तत्पद का
अर्थ लिखते हैं परिपूर्ण एक रस नित्यानन्द ज्ञानस्वरूप
परमात्मा सर्वज्ञ परमेश्वर संपूर्ण शक्ति वाला जिसकूं।
वेद ऐसा प्रतिपादन करते हैं सो परमात्मा ब्रह्म है जो प्रपंच
का कारण अन्तर्यामी कर्मों के फल का देनेवाला जगत की

सृष्टि स्थिति लय जिसके सकाश से होते हैं सोई तत्पद का वाच्यार्थ है और एक शुद्ध चैतन्य तत्त्वम् पदों का लक्ष्यार्थ है तत्त्वम् पदोंकी एकता दूसरे अध्याय में जैसे लिख आये हैं वो प्रकार यहां चिंतवन कर लेना तात्पर्य जो तत्पद का लक्ष्यार्थ है सोई त्वम् पद का लक्ष्यार्थ है सो तू है ऐसा कहो वा तू सो है ऐसा कहो इस प्रकार गुरु ने शिष्य कूं बोधन किया और कहा कि मैं ब्रह्म हूं यो वाक्यार्थ जबतक भले प्रकार दृढ़ न हो तब तक शम दमादि साधनों करके युक्त हुआ श्रवण मनन निदिध्यासन का अभ्यास नित्य प्रति दिन करता रहे श्रवण ऐसे करे सुना जाता है जिस समय कोई ऐसा राग गाता है मृगके मुख में जो तृण होता है सो बाहर का बाहर और भीतर का भीतर रह जाता है दृष्टान्त में आप समझ लेना दश उपनिषद् वृहदारण्यादि भाष्य सहित शारीरक भाष्य गीता भाष्य ये तीन प्रस्थान वेदान्त के कहलाते हैं उनकूं ही ब्रह्म विद्या कहते हैं आदित्य पुराण पञ्चदशी आदि ग्रन्थों का उन्हीं में अन्तर्भाव है ऐसे ऐसे ग्रन्थों का ब्रह्म निष्ठों से श्रवण करना जब तक संशय विपर्यय भले प्रकार न जावे तब तक बारम्बार आदि से अन्त तक इन ग्रन्थों का श्रवण करना इसीका नाम श्रवण है मनन ऐसे करना जैसे पटवा रेशम कूं सुलझाता है ऐसे ही जो श्रवण किया

उसकूं एकान्त में बैठकर चिन्तवन करे पूर्व पक्ष साधन फलादि कूं पृथक् करे युक्ति से सिद्धान्त वस्तु को पुष्ट करे इसी का नाम मनन है निदिध्यासन ऐसे करना जैसे कोई बजार में बैठा हुआ अपना काम कर रहा था राजा की सवारी आगे कूं चली गई कुछ न मालूम हुआ ऐसे जो मनन करके सिद्धान्त वस्तु का निश्चय किया है कि मैं देह प्राण इन्द्रिय मन बुद्धि अज्ञान का साक्षी कूटस्थ हूं इसका सदा चिन्तवन करना इसकूं तो सजातीय प्रवाह कहते हैं और जैसे प्रथम देह में अध्यासन था कि मैं ब्राह्मणादि हूं इसका सदा चिंतवन न करना इस कूं विजातीय तिरस्कार कहते हैं इस प्रकार सजातीय प्रवाह और विजातीय तिरस्कार सदा करते रहना इसी कूं निदिध्यासन कहते हैं श्रवण से अज्ञान का नाश होता है मनन करने से संशय का नाश होता है निदिध्यासन करने से विपर्यय का नाश होता है फिर महा वाक्यार्थ का ज्ञान भले प्रकार दृढ़ हो जाता है सोई मुक्ति का हेतु है ॥ इति श्री आनन्दाऽमृत वर्षिणी सप्तमोऽध्यायः॥

अथ अष्टमोऽध्यायः

नित्य यह बिचार करता रहै कि यो शरीर इंद्रियादि अविद्या का कार्य है बुद्बुद्वत् नाशवान है मैं तो इन से

विलक्षण एक रस हूं मैं देह नहीं इस हेतु से मेरे जन्मादि नहीं मैं इन्द्रिय नहीं इस हेतु से शब्दादि विषयों करके। मेरा संग नहीं मैं मन नहीं इस हेतु से दुःख सुखादि मेरे। धर्म नहीं मैं प्राण नहीं इस हेतु से भूख प्यास मेरे धर्म। नहीं मैं निर्गुण तो निःक्रिय नित्य निर्विकल्प निरंजन निराकार निर्विकार नित्य मुक्त निर्मल आकाशवत्। सारे व्यापक बाहर भीतर बे संग अचल नित्य शुद्ध नित्य बुद्ध अखण्ड आनंद अद्वय अक्षर अजर अमर हूं श्री शंकराचार्य भगवान् कहते हैं इस प्रकार जो अभ्यास। निरन्तर करता रहे कि मैं इस प्रकार ब्रह्म हूं तो यो अभ्यास अविद्या कूं कार्य के सहित हरलेता है जैसे रोग कूं औषधि अभ्यास करने के साधन लिखते हैं ये साधन गीता शास्त्र में लिखे हैं शुद्ध बुद्ध करके युक्त सत्त्वगुणी धीर्य से उसी बुद्धि कूं निश्चय करके शब्दादि विषयों कूं त्यागकरके राग द्वेष कूं दूर करके विविक्त देश में बैठकर सदा इस प्रकार भोजन का अभ्यास करना योग शास्त्र में लिखा है दो। भाग तो अन्न करके पूर्ण करे और एक जल करके और एक भाग पवन के प्रचार के लिये खाली रक्खे देह वाणी मनकूं निग्रह करे अर्थात् अपनी इच्छा पूर्वक अपने २ विषय में प्रवर्त नहीं ध्यान योग जो निदिध्यासन इसीकूं मुख्य समझकर नित्य प्रति दिन इस ध्यान योग का।

अभ्यास करते रहना वैराग्य कूं आश्रय रखना अहंकार न करना कि मैं ऐसा विरक्त हूं काम क्रोध दुराग्रह कूं त्याग करके प्रारब्ध के बलसे जो प्राप्त होजावे उसी में सन्तोष करना जो पदार्थ पराई इच्छा से आजावे उनमें ममता छोड़ कर सदा निदिध्यासन करना योग के बल से खोटे मार्ग में प्रवृत्त न होना अर्थात् किसी कूं श्राप देना किसी पर अनुग्रह करना यो न करना परमेश्वर कहते हैं इस प्रकार अभ्यास करने वाला जो मेरा वास्तव तत्त्व स्वरूप है उसकूं प्राप्त होजाता है समस्त दृश्य कूं आत्मा में लय करके जैसे प्रथम अपवाद लिख आये हैं एक आत्मा कूं निर्मल आकाशवत् भावना करता रहे रूप वर्णादि कूं त्याग करके परमार्थ का जानने वाला परिपूर्ण चिदानन्द रूप करके स्थित रहे इस प्रकार अभ्यास करते २ वृत्तिज्ञान उदय होकर अन्तः करण के सहित समस्त अज्ञान कूं भस्म करदेता है जैसे मथन करते २ बांस में अग्नि उत्पन्न होकर समस्त बन कूं भस्म करदेती है जैसे सूर्य के निकलने से प्रथम चांदना होजाता है ऐसे प्रथम मूलाज्ञान का नाश होता है फिर थोड़े दिनों के पीछे सब कार्य उसके स्थूल देह से लगाकर अविद्या पर्यन्त नष्ट होजाते हैं आत्मा तो सदा प्राप्त है अविद्या करके अप्राप्तवत् प्रतीत होता है जैसे अपने गले की माल भूल जावे फिर किसी के बतलाने से प्राप्तवत् प्रतीत

होती है जैसे स्थाणु में पुरुष सुक्ति में रजत रज्जु में सर्प की भ्रान्ति ऐसे २ बहुत दृष्टान्त हैं इसी प्रकार ब्रह्म के विषय । जीवता है जैसे दिक् का भ्रम सूर्य के उदय होने से दूर होता है ऐसे यो वर्ण आश्रमादि की भ्रान्ति अविद्या के नष्ट होने से आत्मा के आविर्भाव होने से दूर होती है जैसे कारण से कार्य भिन्न नहीं ऐसे जगत ब्रह्म से भिन्न नहीं कोई कीट । भ्रमर का ध्यान करते २ भ्रमर हो जाता है ऐसे जो जीव सच्चिदानन्द रूप ब्रह्म सच्चिदानन्द ब्रह्म का ध्यान करते ब्रह्म होजावे तो इस में क्या कहना है जैसे किसी घर में १० छिद्र हो भीतर उसके दीप होवे उसी दीप की प्रभा दश तरफ कूं निकल कर परिच्छिन्न प्रतीत होती है ऐसे आत्मा दीपवत् शरीर घटवत इन्द्रिय छिद्रवत् हैं जैसे उस दीप कूं छिद्र द्वारा पवन लग २ प्रभा उसकी मन्द रहती है ऐसे इंद्रिय द्वारा विषय बासना रूपी पवन लग २ आत्मा का सच्चिदानन्द रूप मन्द सा प्रतीत होता है इन्द्रियों के रोकने से आत्मा सच्चिदानंद साक्षात प्रतीत होता है यावत् प्रारब्ध कर्म शेष है तावत विद्वान उपाधि में स्थित हुआ प्रतीत होता है परन्तु आकाशवत लिपायमान नहीं होता ज्ञानवान । पण्डित भी हैं परंतु मूर्खवत्त जानकर रहता है किसी जगे वायुवत् आसक्त नहीं होता जब अविद्या का नाश होजाता है तब निर्विशेष ब्रह्म में लय हो जाता है इस लाभ से परे ।

कोई और लाभ ब्रह्म लोकादि का नहीं इस सुख से परे। और कोई सुख चक्रवर्त्ति राजा इन्द्र ब्रह्मादि का नहीं इस ज्ञान से पर कोई और ज्ञान भूत भविष्यत् आदि का नहीं इस प्रत्यय रूप आत्मा कूं देखकर मूर्तिमान् परमेश्वर के देखने की इच्छा नहीं रहती यो रूप होकर फिर मनुष्य देवतादि रूप नहीं होता यो जो आनंद रूप है इस आनंद के। एक लेश में ब्रह्मा जी से लेकर चींटी पर्यन्त आनन्दी हैं। जिसकी आभा करके सूर्य चन्द्रादि भासते हैं सूर्य चंद्रादि की आभा करके जो नहीं प्रतीत होता सोई प्रत्यगात्मा ब्रह्म है यो रूप ज्ञान चक्षु करके दीखता है कर्म चक्षु करके नहीं दीखता जैसे अंधे कूं सूर्य उआ, उआ नहीं प्रतीत होता तात्पर्य यो रूप अधिकारी कूं प्रतीत होता है जैसे स्त्री संग का आनंद तरुण अवस्था में आठ दश वर्ष की अवस्था में लड़का लड़की जो इस आनंद कूं अनुभव किया चाहे तो क्या हो सक्ता है जिनके मैले अन्तःकरण हैं उनकूं इस रूप का साक्षात् नहीं हो सक्ता अन्तः करण मैले होने से देवता गुरु वेदान्त शास्त्र में श्रद्धा का अभाव होता है। श्रद्धा के बिना गुरु कृपा नहीं करते गुरु की कृपा के बिना कभी किसी काल में ज्ञान हुआ है न होगा श्री शंकराचार्य भगवान् कहते हैं कि हज़ारो श्रुति अद्वैत ब्रह्म कूं प्रतिपालन करती हैं और यो आत्मा सच्चिदानन्द रूप मैले।

प्रकार निरन्तर प्रकाशवाली भी है परंतु बिना गुरू की कृपा मैले अन्तः करण वाले साक्षात्त करने कूं समर्थ नहीं इसलिये चाहिये प्रथम अन्तःकरण की शुद्धिका उपाय करे क्योंकि श्री भगवान् ने भी प्रथम अर्जुन कूं ज्ञान उप-देश किया फिर कहा है अर्जुन हमने तुमकूं ज्ञान उपदेश किया जो तुम कूं यो ज्ञान अपरोक्ष न हुआ हो तो अन्तः करण की शुद्धि के लिये निःकाम कर्म योग सुनो जैसे सो-ना मैला होता है उसकूं अग्नि में तायकर शुद्ध कर लेते हैं ऐसे अन्तःकरण कूं निःकाम कर्म योग करके शुद्ध करना चाहिये ज्ञान की इच्छा वाले कूं प्रथम निःकाम कर्म मुख्य है शुद्धान्तः करण वाले कूं शमादि साधन मुख्य है। प्रश्न। शुद्धान्तः करण की क्या परीक्षा है। उत्तर। जब जाने यहां के जो देखे सुने स्त्री आदि पदार्थ हैं स्वर्गादि के अमृतादि पदार्थ जो सुने हैं सबकूं चित्त न चाहे दुःखदाई जाने मुक्ति की इच्छा हो तब निश्चय करे कि अन्तःकरण शुद्ध होग-या फिर विवेक वैराग्यादि साधनों करके युक्त होकर यो विचार करे मैं कौन हूं यो जगत् कैसे हुआ है इसका कर्त्ता कौन है उपादान क्या है इसी का नाम विचार है यो देह पंचभूतों का बिकार मैं नहीं इन्द्रिय मन बुद्धि आदि मैं नहीं उनसे कोई बिलक्षण हूं और जो किसी ने प्रथम न्याय शास्त्र पूर्वमीमांसा वा पुराणादि पढ़े सुने हों

वेदान्त शास्त्र न सुना हो इस हेतु से उसके बहुत संशय वि-
पर्यय हो तो शारीरक भाष्य पढ़े सुने वहां भले प्रकार यु-
क्ति पूर्वक निश्चय हो सक्ता है भारत भागवतादि में तो जि-
स जगे जो ज्ञान का प्रसंग है तब तो योहीं प्रतीत होता है
कि ज्ञान मुख्य है और जिस जगे कर्म उपासनादि का प्रसं-
ग है वहां कर्मादि मुख्य प्रतीत होते हैं वैस्नवादि अपने २
मत कूं मुख्य बताते हैं औरों की असूया करते हैं भागव-
तादि में स्पष्ट यो नहीं प्रतीत होता कि समस्त वेद भारत
पुराणादि का कहा समन्वय है अर्थात् मुख्य प्रयोजन
किस में हैं शारीरक भाष्य में भले प्रकार श्रुति स्मृति
युक्ति दृष्टान्त दे दे कर और अनेक दोष भेदवादि आदियों
के मतो में दिखाकर और जिस लिये कर्म उपासनादि का
वेदों में प्रसंग है उतने अंश कूं अंगीकार करके यो सिद्ध
किया है कि समस्त वेद शास्त्र पुराणादि का ब्रह्म में सम-
न्वय है सब श्रुति स्मृति प्रवृत्ति निवृत्ति मार्ग की कोई सा-
क्षात् कोई परम्परा करके ब्रह्म कूं बोधन करती हैं और
जो यो विरुद्ध प्रतीत होता है कि कोई श्रुति कहती है ब्र-
ह्म मन का बिषय नहीं कोई कहती है ब्रह्म सूक्ष्म मन बुद्धि
करके जाना जाता है कहीं ऐसा सुना जाता है जब वैराग्य
होवे उसी समय संन्यास करे कहीं ऐसा सुना जाता है मा-
ता पिता स्त्री आदि के त्याग में दोष है ऐसे ऐसे विरुद्ध

वाक्य अनेक हैं बिचारने से विरुद्ध वास्तव नहीं क्योंकि जै-
सा अधिकारी देखा वैसाही उपदेश किया तात्पर्य सबका
अविरुद्ध भले प्रकार शारीरक भाष्य में निश्चय हो सक्ता
है और मुक्ति के साधन ऐसे ऐसे सुने जाते हैं कि अंत मुक्ति
का साधन है और तीर्थ श्री गंगा जी से लेकर यावत हैं उन
में स्नान करना बद्री नारायण जी से आदि लेकर दर्शन
पाषाणादि मूर्त्तियों का पूजन करना पाठ जप करना चतु-
र्भुजी आदि मूर्त्तियों का ध्यान करना सगुण निर्गुण ब्रह्म
की उपासना से लगाकर वेदान्त शास्त्र का श्रवण मनन
निदिध्यासन तक योहीं सुना जाता है ये सब मुक्ति के
साधन हैं अर्थात् एक एकादशी के ब्रत करने से मुक्त हो
जाता है विष्णु चरणोदक पान करने से श्री गंगा जी में
स्नान करने से मुक्त हो जाता है तात्पर्य सबके माहात्म्य में
योही प्रतीत होता है कि येसब मुक्ति के साधन हैं अब
यो बिचारना चाहिये मुख्य साधन कौन है जिससे निश्चय
मुक्ति होजावे और जो किसी के यो विश्वास है कि एका
दशी आदि ब्रत करने से बद्री नारायणादि के दर्शन करने
से श्री गंगा जी में स्नान करने से निश्चय मुक्त हो जाता है
फिर तृप्ति क्योंनहीं होती तात्पर्य मुख्य साधन मुक्तिका
वेदान्त शास्त्र का श्रवण मनन निदिध्यासन है और सब
परम्परा करके गौण है इसबात कूं भी प्रमाण पूर्वक

शारीरक भाष्य में सिद्ध किया है और जो कि पूर्व मीमां-
सा वाले स्वर्गादि की प्राप्ति कूं मुक्ति कहते हैं और कोई
एक देशी उनके कहते हैं कि नित्य सुख का प्रकट रहना
मुक्ति है सांख्य शास्त्र वाले कहते हैं देह बुद्धि आदि में
अहंकार की निवृत्ति हुये सन्ते औदासीन्य रहना मुक्ति
है पुराण वाले सालोक्य सामीप्य सारूप्य सायुज्य कूं
मुक्ति कहते हैं चारुवाक्य कहते हैं किसी के आधीन
न होना मुक्ति है न्याय शास्त्रवाले कहते हैं २१ दुःखों
का अत्यन्त नाश हो जाना मुक्ति है २१ दुःख न्याय शा-
स्त्र में प्रसिद्ध हैं अत्यन्त नाश अत्यन्ता भाव कूं कहते हैं
अभाव चार प्रकार का है प्रागभाव जो घट से प्रथम घट
का अभाव प्रध्वंसा भाव जो घट के नाश होजाने में घट
का अभाव अन्योन्या भाव जैसे पट में घट का अभाव अ-
त्यन्ता भाव जैसे शशे के सींघ का अभाव ॥ और अनेक
ब्रह्मलोक गोलोकादि की प्राप्ति कूं मुक्ति कहते हैं गरुड़
वाले जो कहते हैं सो तो लोक में बहुत प्रसिद्ध है और भी
अनेक मत हैं अब विचारना चाहिये मुक्ति का क्या अर्थ
है इसका भी निश्चय शारीरक भाष्य में किया है कि अ-
विद्योपहित जीव नामा शुद्ध चैतन्य का प्रतिबिम्ब मि-
थ्या भ्रांति से आपकूं जीव मान्ता है अविद्या की उपाधि से
समस्त संसार मुक्ति पर्यन्त कल्परक्खा है ब्रह्मज्ञान से अविद्या

का नाश हुए सन्ते जीव रूप भ्रान्ति का दूर होना यो मुक्ति
है सर्व अनर्थों की निवृत्ति परमानन्द की प्राप्ति इसी मुक्ति
का लक्षण है जैसे किसी घट गत जल में जो प्रतिबिम्ब सो
जल के दूर होनेसे नाश हो जाता है फिर यो नहीं कहा जाता
कि प्रतिबिम्ब कहां गया और प्रतिबिम्ब के नाश होने और
न होने में सूर्य कुछ और प्रकार के नहीं हो जाते दृष्टान्त में
समझो कि शुद्ध चैतन्य जैसे प्रथम था वैसेही पीछे रहा
जैसे स्वप्न के खुलते हुवे स्वप्न में जो पदार्थ कल्प रक्खे थे
सब उसी समय नाश हो जाते हैं ऐसे पीछे विदेह मुक्ति
के समस्त संसार नाश हो जाता है कोई ऐसा न विचारके
मैं तो मुक्त हो जाऊंगा मेरे शत्रु मित्रादि और जगत् बना
रहेगा उनके पीछे के लिये यत्न करना मूर्खता है स्वप्न के
दृष्टान्त कूं भले प्रकार विचारना चाहिये वेदान्त शास्त्रवा-
लों का जो कहना है वो तो अनुभव में भी आता है श्रुति
स्मृति आदि प्रमाण करके सिद्ध हो सक्ता है और किसी
शास्त्र पुराणादि का मत अनुभव में नहीं आता वेदों से
विरुद्ध स्पष्ट प्रतीत होता है विचारो जैसे जीव का देह पात
हुआ वो यमपुरी कूं वा स्वर्ग कूं वा पितृलोक वैकुंठादि कूं
गया वा उसका जन्म उसी समय इसलोक में होगया वा ग-
रुड़ वाले जो कहते हैं या उसी की व्यवस्था हुई और जो
बात कैसे अनुभव में आवे कि सारी अवस्था में तो मूर्खता

के काम करे अन्तकाल में काश्यादि में मरने से नियम। करके मुक्त हो जाता है जो ऐसे वाक्यों में हठ करते हैं तो मुक्ति के लिये ज्ञानादि में क्यों माथा मारते हैं कहां तक। लिखें हज़ारों ऐसी व्यवस्था हैं सब मतवाले अपने २ मत कूं युक्ति दे दे कर सिद्ध करते हैं परंतु समस्त व्यवस्था कोई भले प्रकार नहीं कहते क्योंकि कोई स्वर्ग कूं नित्य कोई अनित्य कहते हैं कोई। काश्यां मरणान्मुक्तिः। इस श्रुति का अर्थ और ही प्रकार कहते हैं और यो भी भले प्रकार नहीं प्रतीत होता कि स्वर्ग बैकुण्ठ कैलाश ब्रह्मलोक गोलोकादि का कैसे भेद है जैसे कि सात लोक भू र्भुवादि हैं उनमें हीं उनका अन्तर्भाव है वा कुछ और प्रकार है अथवा जिस कूं ब्रह्मलोक कहते हैं उसी कूं बैकुण्ठ पित्रलोकादि कहते हैं जैसे यो स्थिति की व्यवस्था है इससे सिवाय सृष्टि की व्यवस्था है क्योंकि जब प्रत्यक्ष की व्यवस्था नहीं बैठ शक्ती परोक्ष की कौन बैठा सके यद्यपि यो व्यवस्था न कहीं लिखी हो परंतु मेरे श्रवण करने में नहीं आई जो किसी ने सुनी हो प्रमाण पूर्वक अनुभव में आवे तो हम कूं भी यो ही इष्ट है कि जैसे बने संशय दूर करदेना चाहिये यथामति मैं कहता हूं किसी पक्ष में मेरी हठ नहीं यो जो व्यवस्था तो। मुझ कूं शास्त्र में प्रतीत होती है और लोक में यमनादि। बहिश्तादि कहते हैं और इस बात में तो किंचित् भी संदेह

नहीं कि परमेश्वर सबका एक है और यो भी निश्चय होता है यमनादि भी नर्क स्वर्गादि के अधिकारी हैं यो नियम नहीं कि सब नर्क हीं कूं जावें क्योंकि श्री भगवान् कहते हैं सत्त्वगुणी ऊपर के लोकों कूं प्राप्त होवेगा सम दम संतोष दया कोमलता क्षमा दानादि सत्त्वगुण की वृत्ति है उन में दीखती है इस हेतु से निश्चय होता है सत्त्वगुण की तारतम्यता से स्वर्गादि के अधिकारी हैं तात्पर्य इन सब के मतों से मेरी जान में अविरोध व्यवस्था नहीं बैठ सक्ती परंतु वेदान्त शास्त्र के मत से बैठ सक्ती है सो सुनो वेदान्त शास्त्र वाले ऐसा कहते हैं कि यो जगत् अज्ञान करके कल्प रक्खा है स्वप्नवत् मिथ्या है जैसे स्वप्न मे ९ एक स्त्री के साथ एक समय १० पुरुष संग करें दशों का सच्चा है बिचारने से झूंठा है तदुक्तम् ॥ चौपाई ॥

देखिये सुनिय गुणिय मन माहीं। मोह मूल परमारथ नाहीं॥

अर्थात् जगत् का कारण मूल अज्ञान ही है परमार्थ में नहीं जैसे एक रज्जु पड़ी है कोई उसकूं सर्प कोई सूत्र धारा कोई दण्ड कहते हैं सब का कहना भ्रान्ति काल में सच्चा परमार्थ में झूंठा है ऐसे भ्रान्ति काल में एक ब्रह्म में कल्पित स्वर्ग वैकुण्ठादि सब सच्चे परमार्थ में झूठे हैं इस बात की सिद्ध में बहुत श्रुति स्मृति युक्ति दृष्टान्त इतिहासादि प्रमाण हैं वाशिष्ठादि ग्रन्थों में अनेक इतिहास हैं वशिष्ठ जी ने

श्री रामचन्द्र जी कूं अनेक इतिहास सुनाकर इसी बातकूं सिद्ध कियाहै कई पुरुषों ने तप करके यो वर मांगा कि हम सब इसी काल में ब्रह्मा हो जावें वे सब ब्रह्मा होगये और ये ब्रह्मा जीभी बने रहे और उनके ब्रह्माण्ड सब के पृथक् २ हुये और एक ऋषि ने तप करके परमेश्वर से वर मांगा हे परमेश्वर आप की माया देखूं परमेश्वर ने कहा जो दृश्य पदार्थ हैं सब माया है ऋषि कूं यो निश्चय रहा कि माया शब्द करके कोई और पदार्थ है फिर परमेश्वर से प्रार्थना करी कि महाराज नहीं घटने के योग्य यो पदार्थ उसके घटाने में जो चतुर वो माया देखा चाहता हूं महाराज ने वर दे दिया कि देखोगे एक दिन वे ऋषि हृषीकेश स्थान में गंगा जी में स्नान करते थे गंगा जी के तीर आसन पूजादि सब दिये ऋषि ने जल में जो डुबकी मारी सो वे ऋषि अपना ऋषिपना तो भूल गये किसी धींवर की लड़की होगये काल पाकर उस लड़की का विवाह होगया ६० वर्ष की अवस्था में कई लड़के लड़की उसके उत्पन्न हुए और अपने पति के संग में जो आनन्द और संग करके दुःख और संसार के अनेक ताप और बालकों के खिलाने देखने में जो आनन्द और मल मूत्र धोने में जो दुःख सब कूं वे ऋषि स्त्री होकर अनुभव करते भये एक दिन वो स्त्री उसी जगे जहां ऋषि ने

चुबकी मारी थी जल भरने के लिये गई घट कूं गंगा जी के तीरे रखकर गंगा जी में स्नान करने लगी जब नीचे कूं चुबकी मारी तब तो वो स्त्री थीं जब ऊपर कूं मुख उघाड़ा तब अपने शरीर कूं देखे तो ऋषि का शरीर होगया और गंगा जी के तीरे घट भी रक्खा दीखता है आसन पूजा भी रक्खी हुई दीखती है यो भी स्मरण होता है मैं अमुक ऋषि हूं नित्य यहां स्नान करने के लिये आता हूं और यो भी स्मरण होता है मैं अमुक पुरुष की स्त्री हूं यहां जल भरने के लिये आई थी पहले घरका भी व्यवहार स्मरण होता है पिछले घर का भी व्यवहार स्मरण होता है दोनों घरों में प्रीति है स्पष्ट यो निश्चय नहीं हो सक्ता है कि मैं ऋषि वा स्त्री हूं उस काल में उस स्त्री का पति अपने लड़के कूं गोद लिये हुए उसी जगे आया ऋषिने देखा कि निश्चय योही मेरा पति है फिर भले प्रकार निश्चय होगया कि मैं गंगा जी में स्नान करने से ऋषि होगया उस पुरुष ने ऋषि से बूझा महाराज मेरी स्त्री यहां जल भरने आई थी घट उसका यो रक्खा है वो कहां गई आपने भी उसकूं देखी है जो उसका वाक्य सुनकर और बालक लड़के कूं देखकर मोह होगया ऋषि रोने लगा उस पुरुष ने प्रार्थना करके बूझा महाराज वो स्त्री गंगा जी में डूब गई वा किसी सिंहादिनें खालिया और तुम क्यों रोते हो

ऋषि कहते हैं वो स्त्री तो मैं हूं गंगा जी में स्नान करने से ।
ऋषि होगया इस बात की सिद्धि के लिये समस्त व्यवस्था
पिछले घर की और लड़के लड़कियों के नामादि कह ।
दिये उस पुरुष कूं निश्चय होगया कि बे सन्देह यो मेरी ।
स्त्री है ऋषि उस पुरुष से कहते हैं इस लड़के कूं भले प्र-
कार पालना यो करना वो करना उसने कहा कि तुम घर
को चलो जो हुआ सो हुआ बालकों कूं खिलाते रहना
और घर के काम करते रहना ऋषि जी उसके साथ हुवे
उसी समय वो परमेश्वर की माया दूर होगई यो व्यवस्था
कोई एक पल में बीती जितनी देर जल में डुबकी मारी
जब ऋषि जीने ऊपर कूं शिर उभारा देखते हैं वोही मही-
ना वोही महूर्त न वो पुरुष न वो घट है ऋषि जी कूं निश्च-
य हुआ यो परमेश्वर की माया देखी स्कन्द पुराण में ।
केदारखंड में यो कथा भले प्रकार लिख रही है और वा
शिष्ठादि ग्रन्थों में ऐसी बहुत कथा हैं और बहुत प्राणियों
कूं यो बात प्रत्यक्ष है कि स्वप्न तो घड़ी वा दो घड़ी रहा और
राज्यादि १०० वर्ष किये भले प्रकार विचारो माया में क्या
नहीं बन सक्ता और यो जाग्रत निश्चय स्वप्न की बराबर है
क्योंकि जाग्रत के पदार्थ दुःख सुख के हेतु हैं और अनि-
त्य हैं ऐसेही स्वप्न के पदार्थ हैं और जैसे जाग्रत में स्वप्न ।
का निश्चय कर करते हैं ऐसे स्वप्न में भी स्वप्न का निश्चय

किया करते हैं तात्पर्य यो जाग्रत में जो प्रपंच दीखता है समस्त
स्वप्न की बराबर है माया है इससे सिवाय और क्या माया हो-
गी कि गर्भ में ठहर कर वीर्य चेष्टा करने लगता है और बहने
वाला जो पदार्थ वीर्य है उसका कार्य कैसा कठिन हो जाता
है फिर उसी वीर्य में देखो कैसे हाथ पैरादि बन जाते हैं फिर
वोही ब्राह्मण साधु चोर जार कहा जाता है किसी काल में
तो वो लाड़ करने के योग्य किसी काल में भोग करने के यो-
ग्य किसी काल में पूजन करने के योग्य होता है किसी का-
ल में उसकूं देखकर प्राणी ग्लानि मानते हैं किसी काल में
उसके पुत्रादि चाहते हैं कि यो मरजावे तो सुन्दर है किसी
काल में उस शरीर के स्पर्श करने से पातक लगता है मकान
वस्त्रादि अपवित्र हो जाते हैं विचारो एक पदार्थ में कितनी
कितनी अवस्था बीतती है जो एक रस पदार्थ नहीं सबकूं
एक प्रकार का न दीखे सोई माया है चित्त तो बहुत चाह-
ता कि ऐसी २ कथा लिखकर इस बात कूं करामलकवत
सिद्ध करें परन्तु ग्रन्थ का विस्तार होता है बुद्धिमान
एक दृष्टान्त में विचार ले अब विचारो कि वेदान्त शास्त्र
का मत कैसा सुन्दर है परमेश्वर कूं तो परिपूर्ण नित्य मु-
क्त नित्यानंदादि रूप सिद्ध करना भक्ति ऐसी करनी अ-
पना आपा समस्त परमेश्वर में झोंक देना अपने आपे
के न रखने से परमेश्वर की पूर्णता सिद्ध होती है और

सबके मत कूं अंगीकार करना सच्चा बताना यद्यपि स्वप्न के पदार्थ झूठे हैं परन्तु उस समय में तो सच्चे हैं और सब मतवाले अपनेही मत कूं हठ करके सिद्ध करते हैं औरों की असूया करते हैं पूर्वमीमांसा वाले परमेश्वर कूं नहीं मान्ते जो भेद उपासना वाले परमेश्वर कूं मान्ते भी हैं तो परिच्छिन्न मान्ते हैं जब जीव ब्रह्म का भेद कहा स्पष्ट प्रतीत होता है परमेश्वर परिच्छिन्न है और जो वे ऐसा कहें। कि परमेश्वर की माया में क्या नहीं बन सक्ता तो परमेश्वर उनकूं आनन्द रक्खें क्योंकि योंही हमारा सिद्धान्त है जब भेद वादियों का अपने मत में ठिकाना नहीं पाता तब माया कूं अंगीकार करते हैं माया कूं अंगीकार किया और वेदान्त शास्त्र के मत में प्रवेश हुआ क्योंकि वेदान्त से सिवाय और कोई प्रमाण नहीं वेदान्त कूं त्याग करके वृथा और अनात्म शास्त्रों में माथा मारते हैं १८ विद्या हैं। मुक्ति के लिये मुख्य वेदान्त शास्त्र है १४ विद्या तो ये हैं ऋग्, यजुर, साम, अथर्वण, ये चार वेद और ६ इनके। अंग शिक्षा, कल्प, व्याकरण, ज्योतिष, छन्द, निरुक्त, और मीमांसा शास्त्र, तर्क शास्त्र, पुराण, धर्मशास्त्र, ये १४ विद्या हैं वेदान्त शास्त्र का मीमांसा में अन्तर्भाव है। वैशेषिक शास्त्र का तर्क शास्त्र में और सांख्य पातंजल पशु पत वैष्णव रामायण भारतादि का धर्मशास्त्र में

अन्तर्भाव है पुराण १८ हैं ब्राह्म पद्म स्कान्द मार्कण्डेय शैव वैस्नव गणेश सौर भगवत् भविष्यत् ब्रह्मवैवर्त लिंग वामन वाराह कौर्म मात्स्य गरुड़ ब्रह्माण्ड और उप पुराण वाशिष्ठ लिंग नार सिंह नन्दीय नारदीय वामनीय हंस तत्त्वासार दौरवास्य शिवधर्म कापिल वामन वरुण रेणुक वाय वीय कालीय माहेश्वर पाराशर मारीच भार्गवादि भेद से बहुत हैं मनु याज्ञवल्क्य विष्णु यम आंगिरस वशिष्ठ दक्ष संवर्त शाता तप पाराशर गौतम शंख लिखित हरित आपस्तंबी संख कात्यायन वात्स्यायन बृहस्पति देवल नारद पैठीनसी इनके और औरों के भी किये हुए बहुत धर्मशास्त्र हैं कोई १८ विद्या कहते हैं आयुर्वेद धनुर्वेद गांधर्व वेद अर्थ शास्त्र ये चार मिलकर १८ होजाती हैं काम शास्त्र का आयुर्वेद में अन्तर्भाव है नीति शास्त्र शिल्प शास्त्र अश्व शास्त्र गज शास्त्र सूपकार शास्त्र और ६४ कलाओं का अर्थ शास्त्र में अन्तर्भाव है इस प्रकार १८ विद्या हैं॥ वेदान्त शास्त्र का यो सिद्धान्त है कि यो संसार स्वप्नवत है निष्प्रपञ्च ब्रह्म में भ्रान्ति करके नाना प्रकार की कल्पना कर रक्खी है जैसे कोई बागड़ भूमि में दूर से रेती कूं देखकर कहै कि यो नदी है कोई कहता है इस में गोड़े जल है कोई कमर जल कोई अगम्य जल कहता है।

तात्पर्य सबकी कल्पना झूठी है इसी प्रकार जगत की कल्पना झूठी है जो जगत् सच्चा होता तो बड़े बड़े बुद्धिमान मीमांसा सांख्य पातंजलि न्याय शास्त्रादि वालों का सबका एक मत होता सबका मत पृथक् २ होने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि निष्प्रपञ्च ब्रह्म में भ्रान्ति से जगत् कल्पित है इस बात की सिद्धि में बहुत श्रुति स्मृति आदि प्रमाण हैं और अनुभव में भी आवें हैं जैसी जैसी किसी की बुद्धि है वैसाही वैसा जगत कूं कहते हैं और ईश्वर कूं भी यथा मति अन्तर्यामी से लगाकर कुल देवता माता शीतला पीपल वृक्षादि जड़ पदार्थ तक कहते हैं सो कुछ थोड़ा थोड़ा मत उनका भी प्रसंग से सुनो पूर्व मीमांसा शास्त्र वाले तो कहते हैं कर्म करने से मुक्ति है स्वर्गादि प्राप्ति कूं मुक्ति कहते हैं कर्म फल दाता है और कोई ईश्वर नहीं स्वर्गादि नित्य है उनकी उत्पत्ति प्रलय नहीं कोई एक देशी उनके ईश्वर कूं भी मानते हैं सांख्य शास्त्र वाले यो कहते हैं कि जैसे दूध का दधि परिणाम हो जाता है ऐसे प्रकृति जगत् रूप करके परिणाम हो गई है और पुरुष जलगत पद्म पत्रवत् असंग है तात्पर्य परिणाम वाद सांख्य शास्त्र वालों का है आरंभवाद या शास्त्र वालौं का है न्याय शास्त्र वाले यो कहते हैं कि यो जगत् प्रलय के समय ईश्वर की इच्छा से परिमाणु

रूप हो जाता है अर्थात् पृथिवी जल तेज वायु के परिमाणु
हो जाते हैं और सृष्टि के समय ईश्वर की इच्छा से परिमाणु
मिलकर द्वाणुक त्र्यणुक होकर फिर ऐसे ही पृथिवी ।
आदि हो जाते हैं और कहते हैं इस जगत् में सब सात प-
दार्थ हैं पृथिवी जल तेज वायु आकाश काल दिक् आ-
त्मा मन इन ९ पदार्थों कूं तो एक द्रव्य बोलते हैं और रूप
रस गन्ध स्पर्श संख्या परिमाणु पृथक् संयोग विभाग ।
परत्व अपरत्व गुरुत्व द्रवत्व स्नेह शब्द बुद्धि सुख दुःख
इच्छा द्वेष प्रयत्न धर्म अधर्म संस्कार इन २४ पदार्थों कूं
एक गुण बोलते हैं ये गुण द्रव्यों में रहते हैं इसी प्रकार
कर्म सामान्य विशेष समवाय अभाव ये पांच पदार्थ ।
हैं और यावत् जगत् में पदार्थ हैं उनका इन्हीं सात प-
दार्थों में अन्तर्भाव है जीव ईश्वर का भेद कहते हैं जीव
ईश्वर दोनों व्यापक हैं पृथिवी आदि चार द्रव्य कूं पर-
माणु रूप करके नित्य कहते हैं आकाशादि पंच द्रव्य
कूं सदा नित्य कहते हैं व्याकरण वाले कहते हैं शब्द ।
ब्रह्म है सो नित्य है तात्पर्य वैयाकरण स्फोट वादी है ।
पुराण वालों का मत प्रसिद्ध है कोई विष्णु कोई शिव
शक्ति गणेश सूर्य कूं ईश्वर कहते हैं अपने अपने मत
के पृथक् पृथक् शास्त्र सात्वत तंत्र नारद पञ्च रात्र काव
लागी आदि बना रक्खे हैं तात्पर्य पुराण वालों का मत ।

जैसा कि गरुड़ वाले कहते हैं यो बहुत प्रसिद्ध है कहांतक लिखें बहुत मत हैं सांख्य न्याय आस्त्रादि वालों का मत उसीजगे निश्चय हो सक्ता है यहां तो एक नाम मात्र उनका मत दिखा दिया है और नास्तिक बौद्ध चारु वाक्यादि के १८ मत तो मुख्य हैं और भी बहुत भेद हैं वे ईश्वर। वेद कूं नहीं मान्ते कोई शून्यवादी कोई कालवादी कोई स्वभाववादी कोई विज्ञानवादी हैं कोई कपाली मत के हैं नाना मत नास्तिकों के हैं और कठिन हैं पुराण वालों के मत से उनका बहुत बारीक मत है ऐसे ऐसे मत न्याय। वेदान्त के पूर्व पक्षों में बहुत लिख रहे हैं क्योंकि वेदान्त। नय्यायक उनके मत कूं खराडन कर सक्ते हैं पुराण वालों से उनका मत खराडन नहीं हो सक्ता उनकी युक्ति बहुत बारीक है और जो पाखराड अब कलियुग में प्रसिद्ध है। उनका लिखना योग्य नहीं तात्पर्य चार वर्ण चार आश्रम और अनुलोमज प्रतिलोमजादि जाति शास्त्र विहित हैं उनसे पृथक् जिसका वेद स्मृतियों में पता न लगे सब पाखराड मनुष्यों के रचे हुये हैं बुद्धिमान को विचार लेना चाहिये अन्तर्यामी हिरगयगर्भ बिराट् कूं वैदिक उपासना वाले ईश्वर कहते हैं शिव बिस्नु शक्ति सूर्य गणेशादि। कूं पुराण वाले ईश्वर कहते हैं भूमया भोपाल भूत पिशाच योगिनी आपा पीपल कुदालादि अनेक हैं ॥

उनकूं प्राकृत जीव ईश्वर कहते हैं इस के भजने से सृष्टि होती है इस हेतु से वे ईश्वर कहते हैं वेदों में और लोक में अन्तर्यामी सूत्रात्मादि भेद करके बिस्नु शिवादि भेद करके राम कृष्णादि भेद करके राधावल्लभ गोपालादि भेद करके हनूमान भैरवादि भेद करके पाषाण मृत्तिकादि भेद करके हज़ारों भेद ईश्वर के प्रतीत होते हैं अब बुद्धिमान् बिचारे कौनसा ईश्वर सच्चा है कौन सा मत सच्चा है हम सत्य कहते हैं योहीं बिचारो कि यो सब माया है बिवर्त बाद आभास वाद अजात बाद वेदान्तशास्त्र वालों का है सोई सत्य है और तत्त्वं पदों का जो एक लक्ष्यार्थ सच्चिदानन्द रूप है सोई परमेश्वर है इसीकूं ज्ञान कहते हैं योही ज्ञान मुक्ति का हेतु है ॥

इति श्री आनन्दाऽमृत वर्षिणी अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

अथ नवमोऽध्यायः

देहादि के साथ तादात्म्य करके देहादि में जो अहं बुद्धि इसी कूं अज्ञान कहते हैं यो विचारो कि आत्मा तो शुद्ध १ परिपूर्ण २ सत्य ३ चैतन्य ४ आनन्द ५ अखण्ड ६ अज ७ अमर ८ एक रस ९ और भी बहुत बिशेषण हैं और अशुद्ध देह १ परिच्छिन्न २ असत्य ३ जड़ ४ दुःख रूप ५ एक देशी ६ जन्मवाला ७ नाशवाला ८ निन्दनीक

रस नहीं रहना ९ आत्मा की और देह की जो एकता देखते हैं इस से परे और क्या अज्ञान होगा इस अज्ञान का कारण आसुरी सम्पत् है सोई दिखलाते हैं दम्भ दर्प अहंकार अपवित्र अभिमान ईश्वर कूं न मानना क्रोध कठोरता निर्दयता धर्म की प्रवृत्ति कूं न जानना अधर्म की निवृत्ति कूं न जानना असत्य बोलना जगत कूं अनीश्वर कहना बड़ी बड़ी कामना मन में रखनी जो कभी पूर्ण न हो खोटे खोटे आग्रह करने सज्जनों से बैर करना गुणवानों में दोष निकालना बुद्धि तमोगुणी होनी अर्थात हम ने। कथा कही थी उस से हमारी क्षती हुई शास्त्र वालों कूं पाखण्डी कहना चिन्ता ऐसी ऐसी करनी जिसका प्रलय पर्य्यन्त ठिकाना न लगे निश्चय यो रखना जो हम खा पहर जावेंगे स्त्रियों के साथ आनन्द भोग जावेंगे। योही मुख्य है देना नट बन्दर वालों कूं कभी किसी साधु ब्राह्मण कूं जो देता तो दम्भ अहंकार करके और उनका तिरस्कार करके हज़ारों आशारूपी फाँसियों में। बंधे रहना अन्याय करके रुपयादि सञ्चय करना यो मुझ कूं प्राप्त है जो प्राप्त करूंगा मेरी बराबर और कौन है धन हमारे बहुत कुटुम्ब हमारे बहुत ऐसे ऐसे अवगुण आसुरी सम्पत वालों कूं श्री भगवान ने कहे फिर। कहा ऐसे पुरुषों की मुक्ति तो दूर है मुक्ति का मार्ग भीउन

कूं नहीं मिलेगा ये पुरुष जगत के भ्रष्ट करने वाले हैं ऐसों
कूं हम पशु की योनियों में फेंकेंगे बारम्बार सर्प बिच्छू
कीट शूकर कूकरादि योनियों में जन्म लेते रहेंगे फिर
कहा काम क्रोध लोभ ये तीन नर्क के द्वारे हैं आत्मा कूं
मूढ़ योनियों में प्राप्त करने वाले हैं उनकूं तो अवश्य ही
त्याग करना चाहिये प्रथम उनकूं त्याग करके जो पीछे
मुक्ति में प्रयत्न करेगा तब सिद्ध होगा अर्जुन ने श्रीकृष्ण
महाराज से प्रश्न किया। महाराज किस करके प्रेरा
हुआ यो पुरुष पाप कूं करता है इच्छा नहीं भी करता
परन्तु ऐसा प्रतीत होता है जैसा कोई बल करके पाप से
जोड़ दे श्री भगवान् ने कहा हे अर्जुन जो तुमने बूझा पाप
करने में क्या हेतु है सो सुनो काम हेतु है कामना ही से
क्रोध होता है रजोगुण से इसकी उत्पत्ति है रजोगुण
के जय करने से इसका भी जय हो जाता है अनन्त है
भोजन जिसका बड़ा पापी मोक्ष मार्ग का बैरी काम कूं
जानो जैसे धूप ने अग्नि कूं मलने दर्पण कूं जेरने गर्भ कूं
ढक रक्खा है ऐसे काम ने बिबेक कूं ढक रक्खा है प्राकृ
तियों कूं तो यो काम भोग समय मित्र सा प्रतीत होता है
ज्ञानी कूं तो भोग समय भी दोष दृष्टि होने से बैरी दीख
ता है कितनाही भोग भोगो कभी तृप्ति न हो और दूनी
अग्नि लगे इसकी जय का उपाय यो है यो काम इन्द्रिय

मन बुद्धि में रहता है क्योंकि विषय कूं देखा सुना संक-
ल्प विकल्प किया निश्चय किया फिर काम का आवि-
र्भाव हो जाता है सो काम विवेक कूं आवर्ण करके आ-
त्मा कूं मोहता है इसलिये यावत् इन्द्रिय का विषय के
साथ सम्बन्ध नहीं हुआ प्रथम मोह से विषयों में दोष
दृष्टि करके इन्द्रियों कूं रोकना फिर इन्द्रिय नहीं रुक स-
क्ती देह इन्द्रिय मन बुद्धि से परे जो आत्मा उस कूं आश्रय
करके इस पापी काम कूं मारा जैसा यो परमेश्वर ने अ-
र्जुन कूं उपदेश किया ऐसा ही किसी गुरु ने शिष्य कूं
उपदेश किया कि हे शिष्य ये काम क्रोधादि प्रथम
तो ज्ञान की सिद्धि के लिये त्यागने योग्य हैं और ज्ञान
हुये पीछे जीवन्मुक्ति के लिये त्यागने योग्य हैं शिष्य
कहता है महाराज जीवन्मुक्ति मुझ कूं मत हो देह पात
के पीछे तो मैं विदेह मुक्त हो जाऊंगा गुरु कहते हैं जो
तुमने यहां के तुच्छ पदार्थों के भोगने के लिये जीवन्मु-
क्ति का अंगीकार नहीं किया तो निश्चय होता है स्वर्गा-
दि पदार्थों के भोगने के लिये विदेह मुक्ति का भी अंगी-
कार नहीं करोगे इस हेतु से प्रतीत होता है तुम स्वर्ग मात्र
से आपकूं कृतार्थ जानोगे फिर निश्चय आपका जन्म
होवेगा जो कभी तुमने अपने मन में यो माना हो कि
स्वर्ग क्षय अतिशय माहस्य पतन इन तीन दोषों

करके त्यागना योग्य है ॥

टी०। दिन दिन प्रति अपना किया हुआ पुराय काम होता रहता है इसकूं तो क्षय दोष कहते हैं और जैसे इस लोक में चक्रवर्त्ति राजा से लगाकर कंगाल पर्यन्त तार तम्यता है ऐसे स्वर्ग में विमान ऐश्वर्यादि की तार तम्यता है अपने से अधिक विमान वाले कूं देख कर मन में अतिशय रहना यो दूसरा दोष है और जब समस्त पुराय नाश होता है तब उसके गले की माला सूख जाती है वो तो अपने आप वहां से नीचे गिरना नहीं चाहता परन्तु वेही स्त्री जिनके साथ बिहार करता था टांग पकड़ कर उलटा डाल दिया करती हैं तीसरा यो साहस पतन दोष है ॥

मू०। विचारो कि इन तुच्छ पदार्थों में जो अनेक दोष करके युक्त हैं श्री भगवान् भी कहते हैं ये शब्द स्त्री आदि भोग निश्चय दुःख के कारण हैं उनके नाश अप्राप्ति में जो दुःख हैं सो तो प्रसिद्ध हैं परन्तु प्राप्ति काल में भी स्पर्द्धा निन्दा भयादि दोषों करके युक्त दुःख रूप हैं फिर उनमें दोष दृष्टि करके क्यों नहीं त्यागते जब ये तुच्छ पदार्थ न त्यागे गये स्वर्गादि के पदार्थों कूं कैसे त्यागोगे और यो तुम्हारा इच्छा पूर्वक आचरण अनिष्ट है इस बात में श्री सुरेश्वरा चार्य जी के वाक्य कूं प्रमाण देते हैं

जाना है ब्रह्मतत्त्व जिसने उसका जो इच्छा पूर्वक आचर-
ण हुआ तो कूकर पशु आदि और ज्ञानियों में क्या भेद
हुआ जब धर्म कर्म शास्त्र की आज्ञा कूं न मानकर इच्छा
पूर्वक आचरण किया फिर असुचि भोजन में किस प्र-
कार दोष प्रतीत होगा शिष्य कहता है महाराज मुझ कूं
इतनेही मात्र से अनिष्ट सूचन किया गुरु उपहास पूर्वक
कहते हैं ज्ञान से प्रथम तो तुम कूं मन मात्र के दोषों करके
क्लेश था अब समस्त लोगों की निन्दा सहनी अंगीकार
करते हो आपके बोध की क्या स्तुति हो सके आपके बो-
ध का जो वैभव है सो आश्चर्य है ऐसा बोध तो हम कूं भी
नहीं हुआ यो बात लोक में प्रसिद्ध है जो काले कम्बल
पर और भी छींट स्याही की पड़ जावे तो कुछ नहीं प्रती-
त होती परन्तु श्वेत चादर पर जो एक छींट भी और रंग
की पड़ जावे वो भी दूर से चमकती है ऐसे ज्ञानी का जो
किञ्चित् भी अन्यथा आचरण प्रतीत हो तो भी मूर्ख
उस बात कूं बढ़ाकर कुछ कुछ बकने लगते हैं यो तो उन
कूं विचारही नहीं कि जो विधि निषेध व्यवहार है यो
गुणों का कार्य है इष्टा उनका असंग है और जो स्वसं-
वेद लक्षण ज्ञानी के हैं उनकूं मूर्ख क्या जानेंगे केवल
जड़ भरतादि के दृष्टान्त दे दे कर निन्दा करेंगे और जो उनकूं
कहा बोध है कि ये तीनों गुण सदा विदेह मुक्ति से प्रथम

सब में देवता से लगाकर पशु पर्य्यन्त रहते हैं किसी के थोड़े किसी के बहुत और ये सब देखना सोना खाना पीना आदि अन्तःकरण का धर्म है अन्तःकरण माया का कार्य्य होने से मिथ्या है कोई कोई तो ऐसा जान्ते हैं कि अन्तरंग साधन मुख्य है बहुत तो बहिरंग साधनों कूं प्रमाण दे दे कर निन्दा स्तुति करते हैं शिष्य कहता है महाराज फिर क्या करना चाहिये गुरू कहते हैं करना क्या चाहिये ये करना चाहिये जो शूकर कूकर की बराबर तो है इसकूं वमनवत त्याग दो तुम तो विचार वान् हो जितने अन्तःकरण गत दोष हैं सबका संग त्याग करके देवता की बराबरता अंगीकार करो तुम इन मनुष्यों करके देवता के सम पूजने के योग्य हो काम क्रोधादि में जो जो दोष दुःख हैं सब मोक्ष शास्त्र में प्रसिद्ध हैं वहां से तालाश करके दोषदृष्टि कर कर कामनादि का त्याग करके जीवन्मुक्ति सम्पादन करो शिष्य कहता है महाराज मैंने अंगीकार किया कामादि का तो त्याग करूंगा परन्तु मनोराज्य करने में तो मैं सती नहीं गुरू कहते हैं मनोराज्य कूं समस्त दोषों का बीज होने से श्री भगवान् ने सती कही है उस अर्थ कूं घटाते हैं बैठे बैठे मनोराज्य हुआ अमुक पदार्थ में अर्थात स्त्रियादि में ये गुण है उस [illegible] की ध्यान करते करते उस पदार्थ में स्नेह [illegible] होगया संग होने के पीछे

फिर अधिक कामना हो गई कामना रूपी जो अग्नि।
उसकी शान्ति के लिये किसी के पास गये कहा हम।
कूं यो वस्तु चाहती है उन्होंने नदी तब क्रोध उत्पन्न हुआ
अब अपने दोष कूं तो बिचारते नहीं कि यो मेरे मनोराज्य
ने अनर्थ किया है उस में दोष निकालते हैं कहते हैं दे-
खो जी कैसे पापी अधर्मात्मा हैं साधु ब्राह्मण की आ-
ज्ञा नहीं करते क्या धन छाती पर धरके लेजावेंगे और
अनेक कहने न कहने के योग्य शब्दों कूं कहते हैं और
जो मन में ताप होता है उसके तो आप साक्षी हैं फिर।
क्रोध से संमोह अर्थात् कार्य अकार्य के विवेक का।
अभाव हो गया फिर जो शास्त्र गुरु से सुना था सब भू-
ल गये फिर चेतना रूपी बुद्धि का नाश होगया अर्थात्
फिर भी होशियार होजावें यो बुद्धि न रही फिर अपने
पुरुषार्थ से भ्रष्ट हो गये बिचारो मनो राज्य ने कैसा अ-
नर्थ किया जो मनो राज्य होकर मन में कामना आई।
थी तो उस में प्रवर्तन होना था जो प्रवर्त भी हुये थे तो।
उनके न देने में जो अपमान हुआ था उसकूं सहजाना।
था उन कूं कुछ यद्वा तद्वा न कहना था जो उस समय इन-
कार भी कर दिया था अथवा दुर्वाक्य भी कह दिया था
तो फिर सत्वगुणी वृत्ति में काम आते जो कुछ वेदान्त
भी थे आगे कूं जो उनसे काम निकलता सो सब नष्ट।

हो गया उनकूं तो क्रोध में आकर यद्वा तद्वा कह बैठे फिर यो सुख न रहा कभी उनके समीप ही जा बैठें और जो कभी उनके सत्त्वगुणी वृत्ति का विशेष उदय हो और बहुत दान करें तो आप कूं कुछ नहीं मिल सक्ता सारी अवस्था कूं तो उन से सुखवृत्त तोड़ बैठे और जिन्होंने सुना उन्होंने भी अपने आप से मन फेर लिया बारम्बार विचारो मनोराज्य बड़ा अनर्थ करता है इसलिये मनो राज्य का भी जय करो मनोराज्य कामना का जय करने से ज्ञानहारा मुक्त हो जाता है ॥

इति श्री आनन्दाऽमृत वर्षिणी नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

अथ दशमोऽध्यायः

प्रथम थोड़े से साधन जीवन्मुक्ति के लिये लिख भी आये हैं अब और भी सुनो जिनके अनुष्ठान करने से कामादि का जय हो जाता है साधक कूं तो अभ्यास करने से सिद्ध होते हैं सिद्ध में स्वभाव से रहते हैं जीवन्मुक्ति के ५ प्रयोजन हैं प्रथम उनकूं लिखते हैं ॥ ज्ञानरक्षा १ तप २ बिसम्बाद का अभाव ३ दुःखों की निवृत्ति ४ सुख का आविर्भाव ५ अर्थ इनका यो है जीवन्मुक्ति के अभ्यास करने से संशय विपर्यय का उदय नहीं होता शुक राघव अस्मदादिवत् अकृत उपासक कूं कदाचित संश-

यादि के उदय होने के भय से अवश्य जीवन्मुक्ति का अ-
भ्यास करना योग्य है श्री भगवान् कहते हैं जिसके सं-
शय है वो नाश होता है संशयादि का उदय न होना ज्ञान
रक्षा १ चित्त की एकाग्रता तप है सब धर्मों से श्रेष्ठ है ज्ञा-
नी का तप लोक संग्रह के अर्थ है श्री भगवान् कहते हैं
श्रेष्ठ पुरुष जो जो आचरण करता है सोई सो और भी
आचरण करते हैं संग्रह भले तीन प्रकार के हैं शिष्य १
भक्त २ तटस्थ ३ शिष्य तो गुरु के शास्त्र विहित आच
रण कूं देख देख अधिक अधिक श्रद्धा हो कर फिर उन-
के वाक्यों में विश्वास करके मुक्त होता है १ और भक्त उन
की पूजादि करके वांच्छित फल कूं प्राप्त होता है ॥ वि-
भूति की कामना वाला ज्ञानी का पूजन करे जिस जिस
लोक की मन से भावना करेगा और जोजो कामना चा-
हेगा उसी उस लोक और उसी उस कामना कूं प्राप्त होगा
ये श्रुति का अर्थ है स्मृति का भी अर्थ सुनो जो एक ॥
ब्रह्म का जाननेवाला भोजन करे तो समस्त जगत् तृप्त ॥
होता है इसलिये जो कुछ देवे योग्य है सो ब्रह्म वित् कूं ॥
देना चाहिये तटस्थ दो प्रकार का है सन्मार्गी १ असन्मा-
र्गी २ सन्मार्गी तो ज्ञानी के आचरण कूं देख देख अपने
आप सदाचार करके मुक्त होगा, असन्मार्गी जीवन्मुक्ति
की दृष्टि करके सारे पापों से मुक्त होगा यहां स्मृति ॥

प्रमाण है जिस की अनुभव पर्य्यन्त बुद्धि तत्त्व के विषय प्रवर्त्त है उसकी दृष्टि गोचर जो होगा अर्थात् कृपा दृष्टि से जिस कूं वे देखेंगे वो सारे पापों से छूट जावेगा जो ज्ञानी कूं वाणी आदि करके दुःख देंगे मन करके द्वेष करेंगे वे ज्ञानी के पाप कूं ग्रहण करेंगे यहां श्रुति प्रमाण है सुहृद ज्ञानी के पुराय द्वेषी ज्ञानी के पाप कूं ग्रहण करेंगे यो श्रुति का अर्थ है २ जिस समय ज्ञानी की वहिर्मुख हत्ति हो उस समय उस कूं कोई दुर्वाक्य बोले उस कूं सुनकर अथवा वृथा कोई मार भी दे चित्त की वृत्ति में रागद्वेष उदय न होना इसका नाम विसम्वाद का अभाव है ३ संसार के व्यवहार में धन के सञ्चयादि में अनेक प्रकार के दुःख और मुक्ति के लिये श्रवणादि में अनेक दुःख हैं जीवन्मुक्ति के सब दुःख नाश हो जाते हैं यदि आत्मा कूं जानता है कि मैं यो हूं फिर किस्की इच्छा करता हुआ और किस कामना के लिये शरीर कूं दुःख दे यो श्रुति का अर्थ है ४ समाधि करके दूर कर दिये हैं चित्त के मल जिन्होंने और आत्मा में प्रवेश किया है चित्त जिन्होंने उनकूं जो सुख होता है उसकूं वाणी नहीं कह सक्ती अपने अनुभव करके जाना जाता है यो श्रुति का अर्थ है जैसे कोई १६ वर्ष की स्त्री से १०, ११ वर्ष की लड़की बूझे कि तू सुसराल में गई थी तुझ कूं पति के संग में क्या आनन्द हुआ जैसे वो उस

आनन्द कूं अनुभव करती हुई उन कूं कम समझ जान कर हंसकर चुप हो जाती है ऐसे ज्ञानी ब्रह्मानन्द कूं अनुभव करते हुये औरों को कम समझ जानकर मौन रहते हैं यो सुखाविर्भाव पांचवां प्रयोजन जीवन्मुक्ति का कहा ५ जीवन्मुक्ति के लिये जो अष्टांग योग कहते हैं उसकूं भी थोड़ा सा सुनो योग के ८ अंग हैं यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान समाधि, अर्थ इनका पातंजल शास्त्र में भले प्रकार निश्चय हो सक्ता है यहां इसलिये नहीं लिखा कि इस योग करने की सम्प्रदाय लोप हो रही है बिना गुरु वो योग सिद्ध नहीं हो सक्ता जिसकूं ये योग करना हो और कोई गुरु मिले तो वहां से उनका अर्थ निश्चय करे परन्तु और प्रकार भी उनका अर्थ करते हैं परिपक्क है चित्त जिनका वे इनका ऐसा अर्थ निश्चय करें देहादि में विरक्ति यम १ स्वात्म तत्त्व में अनुरक्ति नियम २ जैसे बैठे चलते लेटे सुख पूर्वक निरन्तर ब्रह्म का चिन्तवन होता रहे वोही आसन है सुख पद्मादि आसन मन्द के लिये हैं ३ प्राण के चलते हुये अपने आप सदा यो जप होता रहे सोऽहम् सोऽहम् सोऽहम इस का जो अर्थ उस में चित्त कूं स्थिर करना अर्थात् योही निश्चय रखना कि मैं ब्रह्म हूं ४ श्रोत्रादि इन्द्रियों कूं शब्दादि विषयों से

(स्थिरता)

रोकना प्रत्याहार ५ बुद्धि कूं विषयों से विमुख करना धारणा ६ जहां जहां दृष्टि जावे वहीं वहीं ब्रह्म देखना दृष्टि कूं ब्रह्म मयी करके सब जगत कूं ब्रह्ममय देखना सो दृष्टि श्रेष्ठ है अथवा द्रष्टा दर्शन दृश्य इनका जहां विराम हो वहीं दृष्टि करनी नासाग्र दृष्टि बालकों के लिये है ७ मैं असंग सच्चिदानन्द परिपूर्ण निरवयव एक रस हूं इस प्रकार चित्त का समाधान करना समाधि सो दो प्रकार की है सविकल्प १ निर्विकल्प २ त्रिपुटी सहित सविकल्प १ त्रिपुटी रहित निर्विकल्प २ निर्विकल्प समाधि करने के समय चार विघ्न होते हैं लय १ निद्रा अज्ञानी विक्षेप २ बारम्बार विषयों का अनुसन्धान होना कषाय ३ चित्त का रागादि से तो हट आना परन्तु स्वरूप में न पहुंचना बीच की हालत का नाम कषाय है इसी कूं साक्षी भाव कहते हैं रसास्वाद ४ समाधी के आरम्भ समय सविकल्प का आनन्द होना कि मैं ऐसा आनन्द रूप परिपूर्ण हूं ये चिन्तवन होना इस कूं रसास्वाद कहते हैं अभ्यास आसन विषयों में दोष दृष्यादि करके लय विक्षेपादि का जय करना चाहिये वशिष्ठजी कहते हैं चित्त नाश करने के दो मार्ग हैं ज्ञान १ योग २ ये दोनों मार्ग भगवान ने भी गीता शास्त्र में कहे हैं देहादि से परे आत्मा कूं जानना अर्थात असंग नित्य मुक्त अपने कूं निश्चय करना

यो ज्ञान है और चित्त की वृत्ति का निरोध करना इस का नाम योग है चित्त वृत्ति निरोध का प्रकार चार प्रकार से वशिष्ट जीने कहा है सदा वेदान्त शास्त्र कूं पढ़ना सुनना बिचारना १ जो ब्रह्म निष्ठ साधु हैं उनका संग करना २ समस्त वासना का त्याग करना ३ अष्टांग योग करना ४ प्रथम साधन उत्तम अधिकारी के लिये हैं जो वहां चित्त का निरोध न हो तो ये तीन उत्तरोत्तर हैं ✱ और जो चित्त के निरोध का प्रकार आत्मा संयम योग नाम करके श्री भगवान् ने गीता शास्त्र में कहा है उसका भी अर्थ संक्षेप करके लिखते हैं योगी मन कूं समाहित करि अकेला एकान्त में बैठकर भले प्रकार जीते हैं वश किये हैं मन इन्द्रियादि जिसने सो निराकांक्ष होकर शरीरयात्रा से सिवाय भोजन वस्त्रादि सामग्री कूं त्याग करके पवित्र देशमें शुद्ध भूमि में अपना आसन बिछाकर वो आसन बहुत नीचा ऊंचा न हो नीचे कुशा का आसन तापर उसके मृग चर्मादि फिर ऊपर वस्त्र बिछाकर मन कूं एकाग्र करके बस करी है चित्त इन्द्रियों की क्रिया जिसने सो उस पर बैठकर चित्त की शान्ति के लिये अभ्यास करे चित्त के एकाग्र करने में देह की धारणा भी उपयोगी है उसका धारणा प्रकार लिखते हैं देह का जो मध्य भाग उसकूं शिर और ग्रीवा कूं सम निश्चय करके नासाग्र दृष्टि

होकर पूर्वादि दिक् कूं नहीं देखता हुआ दूर हो गया है।
भय जिसका सो ब्रह्मचारी व्रत में स्थित होकर आत्मा
में है चित्त जिसका आत्मा ही है परं पुरुषार्थ जिसके
इस प्रकार युक्त हो कर बैठे श्री भगवान् कहते हैं जो इस
प्रकार सदा मन कूं समाहित करता हुआ निरोध हुआ
है अन्तःकरण जिसका सो पराशान्ति कूं प्राप्त होता है
बहुत खाने वाले थोड़े खाने वाले कूं भी बहुत सोने वा-
ले बहुत जागने वाले कूं भी योग सिद्ध नहीं होता तात्पर्य
शास्त्र विहित सोना जागना बोलना चलना भोजनादि
किया जो नियम करके होगा उसकूं दुःखों का नाश।
करने वाला सो योग सिद्ध होता है किस काल में योग
सिद्ध होता है इस अपेक्षा में कहते हैं जिस काल में वश
किया हुआ चित्त आत्मा ही में निश्चय ठहरता है सब।
कामना जो इस लोक परलोक की हैं उन की इच्छा नहीं
करता उस काल में जानो कि योग सिद्ध हुआ जैसे दीवा
बन्द मकान में एक रस प्रकाशता है हलता नहीं ऐसे जी-
ता है चित्त जिसने उसका चित्त प्रकाशता और निष्कं-
पता करके ठहरता है योग करके निरुद्ध हुआ चित्त जिस अव-
स्था में संसार के विषयों से उपराम हो और जिस अवस्था में शु-
द्ध मन करके आत्मा ही को देखे आत्मा ही में तोष करे उस।
अवस्था में निरतिशय सुख कूं अनुभव करता है फिर

उस अवस्था में स्थित हुआ तत्त्व से नहीं चलता उस सुख कूं लाभ करके अपर जो ब्रह्म लोकादि के सुख उन कूं। अधिक नहीं जान्ता उस अवस्था में स्थित हुआ बड़े। भारी दुःख करके भी नहीं बिचलता दुःख का अथम किञ्चित संयोग मात्र करके समस्त दुःख और विषय सम्बन्धि दुःखों का वियोग है जिस में उसी कूं योग जानना सो योग आचार्य शास्त्र में निश्चय करके अवश्य अभ्यास करना चाहिये दुःख बुद्धि करके प्रयत्न की जो शिथिलता उसकूं त्यागना चाहिये टिट्टी के पुरुषार्थ कूं स्मरण करना योग है जैसे कोई यो संकल्प रखता है कि मैं कुशा के अग्र भाग में जितना जल ठहरता है कुशा से इतनाही जल उठाकर समुद्र कूं सुखाऊंगा ऐसाही चित्त। के निरोध करने का संकल्प रक्खे संकल्प से आविर्भाव है जिनका ऐसी योग की प्रतिकूल जो कामना उनकूं। सबकूं त्याग करके और मन करके सब तरफ से इन्द्रिय। ग्राम कूं रोक कर धीर्य करके शनैः शनैः अभ्यास क्रम करके उपराम हो सहसा एक बारही जो पूर्वाऽवस्था में खाना सोना बोलना बैठनादि था उनका सबका त्यागन करे आत्मा में भले प्रकार मन कूं स्थित करके कुछ चिंतवन न करे पूर्वाऽभ्यास रजोगुण के वश में मन जो फिर चले तो प्रत्याहार करके अर्थात् जिस जिस विषय में।

मन जावे वहीं २ से रोक कर मन कूं वश करे अर्थात् आ-
त्मा के विषय स्थिर करे इस प्रकार अभ्यास करते करते
रजोगुण का क्षय होने से योग सुख प्राप्त हो जाता है।
शान्त हो गया है रजोगुण जिसका इसी हेतु से शान्त।
है मन जिसका प्राप्त हुआ है ब्रह्मतत्त्व जिसकूं समाधि
उस कूं जन्य सुख अपने आप प्राप्त होता है ऐसे सदा।
अभ्यास करते हुये योगी दूर हो गये हैं पाप जिसके।
वो अनायास सुख पूर्वक ब्रह्म तत्त्व कूं प्राप्त होता है फिर
कृतार्थ हो जाता है सो योगी सब भूतों में अपने आत्मा
कूं और सब भूतों कूं अपने आत्मा के विषय देखता है
और सम दृष्टि है जिसके उसकूं श्री भगवान कहते हैं।
कि जो मुझ कूं सर्वत्र देखता है उसकूं मैं सदा अपरोक्ष
हूं वो मुझ से पृथक् नहीं जो मुझ कूं इस प्रकार जान्ता
है जैसे उसकी इच्छा हो कर्म त्याग करके तो याज्ञव-
ल्क्यवत् कर्म करता हुआ जनकवत् निषेध कर्म क-
रता हुआ दत्तात्रेयवत् वर तो निश्चय मुक्त होगा वो
सब प्रकार मेरे विषय वर्तता है मुझ से पृथक् कुछ।
नहीं जान्ता जैसे आप कूं दुःख सुख होते हैं दूसरे के
दुर्वाक्य बोलने में दुःख स्तुति करने में सुख ऐसे ही
अपनी उपमा करके सब कूं सम देखे किसी कूं दुःख
न दे ऐसा पुरुष मुझ कूं परं सम्मत है ये योग का लक्षण

श्री भगवान् ने अर्जुन कूं कहा अर्जुन इस योग कूं असम्भव मान्ते हुये बोलते भये हे परमेश्वर समता कर के अर्थात् मन की दो गति लय विक्षेप उनकूं जय करके केवल आत्माकार अवस्थान करके जो ज्ञो योग आपने कहा इस योग की दीर्घ काल जो स्थिति उस कूं नहीं देखता हूं किस हेतु से मन कूं चंचल होने से हे कृष्णचन्द्र मन चञ्चल है स्वभाव ही से चपल है प्रमेथन शील वाला इन्द्रियों कूं क्षोभ करने वाला बल वाला है बिचार करके भी जीतने के योग्य नहीं प्रतीत होता विषय वासना करके अनादि काल का विषयों के साथ बंधा हुआ है इस हेतु से दुर्भेद है जैसे महाराज आकाश में पवन चलता है उस कूं घटादि में रोकना कठिन है ऐसे मन का निग्रह कठिन जानता हूं बशिष्ठ जी भी कहते हैं समुद्र का पानकर जाना सुमेरु कूं उखाड़ लेना आदि जो बहुत कठिन प्रतीत होते हैं सो हो जाते हैं परन्तु मन का निग्रह कठिन है इस बात कूं अंगीकार करके मन के निग्रह का उपाय दिखाते हुये श्री भगवान् बोलते भये हे अर्जुन जो तुम ने कहा सो सत्य है मन ऐसा ही है परन्तु मन की दो गति हैं लय १ विक्षेप २ सो लय कूं तो अभ्यास करके अर्थात् आत्माकार प्रत्यय वृत्ति करके जव

करना और विक्षेप कूं वैराग्य करके अर्थात् विषयों में दोष दृष्टि करके जय करना इन दो उपाय से निश्चय मन का निग्रह हो जाता है अन्तःकरण की वृत्तियों का सूक्ष्म हो जाना इसी का नाम मनो निग्रह है जिन्हों ने देहादि नहीं वश किये हैं उन कूं तो यो योग कठिन है जिन्होंने अभ्यास वैराग्य करके मन कूं वश कर लिया है उन कूं यो योग इसी उपाय करके सहज है अर्जुन बूझते हैं महाराज प्रथम तो कोई पुरुष इस योग में श्रद्धा करके प्रवर्त्त हुआ परन्तु पीछे उसने भले प्रकार प्रयत्न न किया शिथिलाऽभ्यास रहा योग से चित्त चलकर विषय में प्रवर्त्त होगया तात्पर्य मन्द वैराग्य हो गया अथवा अभ्यास करते करते देह का बीच में पात होगया वो पुरुष योग का फल जो ज्ञान उसकूं नहीं प्राप्त होकर किस गति कूं प्राप्त होता है क्योंकि कर्मों के फल कूं परमेश्वर में अर्पण करने से अथवा कर्मों का अनुष्ठान न करने से स्वर्गादि की प्राप्ति जो फल सो तो उसकूं होंगे नहीं ज्ञान के न होने से मुक्त न होगा दोनों तरफ से भ्रष्ट हुआ महाराज कहीं छिन्नाऽभ्रवत् यो बीच में नाश हो जाता है हे परमेश्वर आप सर्वज्ञ हो इसका उत्तर दे सक्ते हो श्री भगवान् बोलते भये हे अर्जुन इस लोक में तो उसका

जो दोनों मार्ग से भ्रष्ट होता है और परलोक में जो नर्क की प्राप्ति ये दोनों उसके नहीं क्योंकि अच्छा कर्म करने वाला कोई भी दुर्गति कूं नहीं प्राप्त होता और जो तो श्रद्धा करके योग में प्रवर्त्त होने से शुभकारी है फिर उसकी क्या गति होती है इस अपेक्षा में कहते हैं ब्रह्म लोकादि जो पुण्यकारी पुरुषों के भोग स्थान उनकूं प्राप्त होकर और बहुत दिन वहां के भले प्रकार भोग भोगकर जो इस लोक में पवित्र धनवाले पुरुष हैं उनके कुल में वो योग भ्रष्ट जन्म लेता है यो गति तो थोड़े अभ्यास करने वाले की है और जिसके ज्ञान होने में कुछ थोड़ी सी देर रही थी वह बुद्धिमान् ब्रह्म निष्ट योगियों के कुल में जन्म लेता है इस लोक में मुक्ति का हेतु होने से ऐसा जन्म होना बड़ा दुर्लभ है वो जो पूर्व देह में ब्रह्म बिषय बुद्धि करके योग करता था फिर वो दोनों कुल में से किसी कुल में उसी योग कूं प्राप्त हो जाता है फिर अधिक मुक्ति के लिये प्रयत्न करता है जो पराये बश भी हो तो भी पूर्वाभ्यास उस कूं बिषयों से हटा कर ब्रह्म निष्ट कर देता है इस अर्थ कूं कैमुतिकन्याय करके दृढ़ करते हैं ज्ञान की इच्छा वाला जो नर कुछ ज्ञान उस कूं प्राप्त नहीं हुआ था और पाप के बश से योग भ्रष्ट भी हुआ परंतु फिर

काल पाकर जिसकी योगति कि शब्द ब्रह्म कूं उल्लंघ
कर पहुंचता है तात्पर्य वेदों ने प्रति पादन किये जो स्व-
र्गादि फल उनका तिरस्कार करके उनसे अधिक फ-
ल जो ब्रह्मानन्द उस कूं अनुभव करता हुआ अपने ॰
आप कूं कृत कृत्य जानता है और जिन्होंने जन्म जन्म में
प्रयत्न करके दूर किये हैं पाप फिर पिछले जन्म में ॰
सिद्ध होकर वे उस गति कूं अर्थात् ब्रह्मानन्द कूं प्राप्त
होवें तो इस में क्या कहना है ॥ अब और प्रकार के ॰
विषयों में दोष दृष्टि पूर्वक जीवन्मुक्ति के साधन सुनो
संसारी लोक दो पदार्थों कूं विशेष चाहते हैं धन २ स्त्री ॰
प्रसिद्ध है कि चोरी, हिंसा, झूठ, दम्भ, काम, क्रोध, गर्व,
मद, भेद, वैर, अविश्वास, स्पर्द्धा, असूया, निन्दा, इत्यादि
अनेक अनर्थ करके धन सिद्ध होता है और उसके कमा-
ने में परदेश में रहना नीचों की टहल करनी पराधीन ॰
रहनादि और रक्षा करने में चोर राजादि का भय और
व्यय करने में उसके कम होने का दुःख और नाश होने
में जो दुःख उसका लिखना क्या चाहिये सब जानते हैं
तात्पर्य जिसके आदि मध्य अन्त में लेश ही लेश है ॰
ऐसे दुःखों के कारण धन कूं धिक्कार है और जो भ्रान्-
त जीव धन से स्त्री मदिरा मांस द्यूत रागद्वेष अभिमान
अहंकारादि ऐसे ऐसे महा अनर्थ करकर नर्क का सामान

करते हैं वो व्यवस्था कहां तक लिखें तात्पर्य जितने पाप हैं सब धन से होते हैं यो धन पापी विद्वान् विचारवानों से भी अनर्थ करादेता है इस बात की सिद्ध में श्रुति स्मृति इतिहास युक्ति आदि बहुत प्रमाण हैं इसके त्याग का अधिक माहात्म्य शास्त्र में लिखा है संसार समुद्र में कान्ता काञ्चन दो आवर्त हैं तीनों भवन इन में भ्रम रहे हैं जो इन दोनों से विरक्त है वो मनुष्यादि नहीं परमेश्वर है स्त्री की स्तुति सुनो चांडाल के घर की बराबर स्त्री है चांडाल के घर में मल मूत्र मांसादि पड़े रहते हैं द्वार में चिन्ह के लिये अस्थि लगे रहते हैं अस्थि के स्तंभ चर्म की रज्जु से बंधे रहते हैं मकान के ऊपर चर्म पड़े रहते हैं जो उसके मकान की यो व्यवस्था है तो विचारो कि उस मकान की जो मोरी जहां कूं उस मकान का मल जाता है उसकी क्या उपमा देनी चाहिये विचारो स्त्री में ये सब वस्तु हैं वा नहीं स्त्री का शरीर मकान वत् भीतर उसके मल मूत्रादि का होना प्रसिद्ध है मुख द्वार वत् दांत अस्थि वत् पैर हस्तादि में अस्थि स्तम्भवत् नाड़ियों से बँधे हुये हैं शरीर के ऊपर चर्म है वा कुछ और है मोरी वत् उस शरीर में मल मूत्र त्याग करने के रस्ते हैं देखो उन कूं ऊपर से देख २ यो जीव बिना विचार के कैसा आनन्द होता है अथा नर्क वत् मोरी में डूबता है विचारो

इस से सिवाय और क्या नर्क होगा जो यो कहो कि हम कूं तो ये दोष नहीं फुरते बेशक हम भी जान्ते हैं कि ऐसे जीव जिनकूं बिष्टा मुरदे के मांस में दोष नहीं फुरते उनके लिये अनेक प्रयत्न करते हैं प्राप्ति के समय अपने कूं कृत कृत्य मानते हैं हमारी दृष्टी में वे भी तो जीव हैं कुछ यो न समझना ऐसे शूकर कूकर ही होते हैं मनुष्य भी बहुत ऐसे होते हैं अब बिचारो मनुष्य शरीर में और पशु में क्या भेद हुआ हजारों जगे इन बातों का प्रसंग है इस प्रसंग कूं बहुत क्या लिखें बुद्धिमान् जीवन्मुक्ति की इच्छा वाला इसी प्रकार सब पदार्थों में दोष दृष्टि कर कर उनका संग न करै और वोही चांडाल के घर का दृष्टान्त अपने शरीर में घटावे अर्थात् चाण्डाल भी उस घर में यो अध्यास नहीं करता में घर हूं यो अध्यास है कि मेरा घर है ऐसे अध्यास करने से तो वो चाण्डाल है और जो देह कूं ऐसा कहते हैं कि हम देह हैं अर्थात् ब्राह्मण क्षत्री आदि वर्ण ब्रह्मचारी आदि आश्रमी पण्डित धनवाले हैं बिचारो यो देह चाण्डाल के घर की बराबर है वा नहीं जब देह कूं यो कहा में देह हूं फिर वो कौन हुआ तात्पर्य ऐसे बिचार देह में से अध्यास का त्याग करै भ्रम से और पदार्थ में और पदार्थ प्रतीत होना इसकूं अध्यास कहते हैं बासना दो प्रकार की है

शुद्ध १ मलिनी २ मुक्ति के लिये शास्त्र विहित अनुष्ठान करने की और श्रवणादि की बासना शुद्धा १ भोगों की बासना और संसार में प्रसिद्ध होने की बासना मलिना २ शुद्ध बासना मुक्ति की हेतु है मलिन बासना जन्म की हेतु है देह यात्रा के लिये भिक्षादि का जो प्रयत्न करना यो ज्ञानी का बासना बंध का हेतु नहीं श्री भगवान् भ कहते हैं जिस में शरीर का निर्वाह होवे वो कर्म करता हुआ पाप कूं नहीं प्राप्त होता ज्ञानी ने शरीर यात्रा से सिवाय और बासना का त्याग करना तीन बासना बहुत दुःख करके त्यागी जाती हैं देह बासना १ लोक बासना २ शास्त्र बासना ३ शरीर कूं बहुत उपटने चंदनादि लगा लगाकर चिकना चांदना रखना और जो इच्छा रखनी कि यो शरीर सदा आरोग्य रहे यो देह बासना १ यो इच्छा रखनी कि सब लोग मुझ कूं भला कहें यो । लोक बासना २ शास्त्र बासना दो प्रकार की हैं एक तो बहुत पढ़ने सुनने की इच्छा रखनी अर्थात् जाने इस । शास्त्र में क्या क्या है दूसरी जो कर्म जपादि करना । शास्त्र विहित करना यो इच्छा रखनी यो शास्त्र बासना ३ इन करके युक्त जो पुरुष उस कूं ज्ञानी भी भले प्रकार नहीं होता तात्पर्य तीनों बासना किसी प्रकार हुई न होंगी युक्ति से बिचार देखो वा शुद्ध शास्त्र

से निश्चय करलो और ये जो दो प्रकार हैं एक तो मनो नाश, नाश वासना क्षय १ और दूसरा सदा वेदान्त का श्रवणादि करना २ इनका अविरोध सुनो जिसकूं संशय विपर्यय करके रहित भले प्रकार ज्ञान हो गया है उसकूं तो मनो नाश वासना क्षय मुख्य है श्रवणादि गौण हैं और जिसकूं भले प्रकार ज्ञान नहीं हुआ संशय विपर्यय है उसकूं श्रवणादि मुख्य हैं मनो नाश वासना क्षय गौण है मनो नाश वासना क्षय के साधन सुनो वाशिष्ट में लिखा है जो जागता हुआ सुषुप्ति वत् रहै और जिसका जागना निर्वास न हो सो जीवन्मुक्ति है श्रीभगवान् कहते हैं ज्ञानी सदा संतुष्ट रहै मनादि कूं वश रक्खे मौन रहै मौनी के तात्पर्य कूं कोई नहीं पा सक्ता बहुत लिखने से क्या प्रयोजन है मौन में बहुत सुख और लाभ है और मैं असंग हूं यो दृढ़ विश्वास रक्खे आत्मा में अर्पित करी है मन बुद्धि जिसने जिससे लोग उद्वेगन करें जो लोगों से उद्वेगन करें सो भक्त मुझ कूं प्यारा है भक्त स्थित प्रज्ञ गुणातीत शब्द करके बहुत प्रकार श्री भगवान् ने जीवन्मुक्त के लक्षण कहे हैं निस्पृही कोई नहीं आरम्भ जिसके किसी कूं नमस्कार न करनी न लेनी न किसी की निन्दा स्तुति करनी समर्थ हुवा, हुवा मिथ्या जानकर कर्मों का त्याग कर देना।

सर्पवत् बहुत पुरुषों से डरता रहे नर्कवत् सन्मान से डरता
रहे मुरदे वत् स्त्रियों से डरता रहे किसी स्त्री से बात न करे
पहली देखी हुई कूं स्मरण न करे स्त्रियों की कथा न क-
हे न सुने काष्ठ की और लिखी हुई कूं भी न देखे उस कूं
देवता ब्राह्मण कहते हैं तात्पर्य जीवन्मुक्त कहते हैं ऐ-
से ऐसे और भी वाक्य हैं हे युधिष्ठिर मुक्ति में जाति का-
रण नहीं शम दमादि गुण कारण हैं ये शम दमादि गु-
ण जो चाण्डाल के भी होंगे तो देवता उस कूं ब्राह्मण
कहते हैं जैसे स्वप्न में प्रपञ्च प्रतीत होता है ऐसे जाग्र-
त् प्रपञ्च का निश्चय करे जैसे बाजीगर के पदार्थों में -
बासना नहीं होती ऐसे इन पदार्थों कूं जानकर बासना
न करे अपने कूं असंग जानने से और संसार की मिथ्या
भाव निश्चय करने से शरीर कूं क्षण भंगुर जानने से बा-
सना का उदय नहीं होता जिसका निर्बासन मन है उस
कूं कर्म और कर्म के फल स्वर्गादि समाधान करना मन्त्र
का जप करना आदि कुछ अपेक्षा नहीं आत्मानन्द से
पृथक् सब इन्द्रजालवत् हैं जब ऐसा निश्चय हुआ फिर
मन की बासना कहां जावे जन्म जरा व्याधि मृत्यु में -
दुःख ही दुःख है फिर भी कुछ एक बार नहीं बारम्बार
दुःख उनका अनुसन्धान करते हुये बासना का उदय नहीं
होता कुसंग के त्यागने से भी बासना का उदय नहीं होता

ज्ञानी ने किसी का संग न करना योंही उनका मुक्त पद है क्योंकि संग से अशेष दोष होते हैं योगारूढ़ भी कुसंग करने से प्रतीत होजाता है थोड़ी सिद्धि वाला जो कुसंग से पतित हो जावे तो इस में क्या कहना है श्री महाभागवत में लिखा है स्त्री के संगी जो पुरुष हैं मुक्ति की इच्छा वाला उनका संग त्याग दे इन्द्रियों कूं शब्दादि विषयों में प्रवर्त न करे विचरे तो अकेला विचरे यदि एकान्त में बैठकर चित्त कूं अनन्त भगवान् में जोड़े जो सर्वथा संग न त्यागा जावे तो साधुवों का संग करे समस्त वासना का त्याग कर देना चाहिये जो सब न त्यागीं जावें तो मुक्ति की वासना रक्खे स्त्रियों का और स्त्री संगी पुरुषों का संग विद्वान् दूर से ही त्याग दे एकान्त में बैठकर आलस्य कूं त्याग करके स्वरूप का चिन्तवन कर स्त्री का संग साक्षात् ऐसा अनर्थ नहीं करता जैसे स्त्री के संगी का संग अनर्थ करता है दृष्टान्त यों है ज्येष्ठ के महीने में दिन भर धूप में चला जाओ वा खड़ा रहो परन्तु मरता नहीं उस धूप कर के तपा हुआ जो रेत उस में बैठ रहने से निश्चय होता है कि मर जावे इसी प्रकार सब पदार्थों की सन्निधि ऐसा अनर्थ नहीं करती जैसा भोगी का संग अनर्थ करता है महज्जनों का संग मुक्ति का हेतु है कामियों का संग नर्क का हेतु है ऐसे ऐसे साधन करके युक्त जीव अपरोक्ष ज्ञान

द्वारा निश्चय मुक्त हो जाता है ॥

दश आदमी नदी उतरे पार जाकर संख्या करी कि कोई हम में से डूबा तो नहीं जिसने संख्या करी उसने आप कूं न गिना फिर यो निश्चय कर लिया कि हम दश थे एक डूब गया वो आप को भूलकर रोने लगा उस समय कोई और पुरुष वहां आगया उसने बूझा कि तुम क्यों रोते हो कहा कि हम दश पार से उतरे थे अब नव हैं एक नदी में डूब गया उसने जो अपने मन में संख्या करी तो दश प्रत्यक्ष हैं उस ने कहा तुम शोक मत करो दशवां है यो वाक्य सुनकर उसको निश्चय हुआ कि दशवां डूबा नहीं कहीं इसने देखा है अपने आप कूं दशवां निश्चय नहीं किया इसकूं तो परोक्ष ज्ञान कहते हैं फिर उसने कहा कि तू मेरे सामने संख्या कर तब फिर उसने वैसेही आप से पृथक् नव कूं गिना आप कूं न गिना उसने कहा दशवां तू है तब उसने जाना कि बेसंदेह दशवां मैं हूं इस कूं अपरोक्ष ज्ञान कहते हैं ऐसेही जिस ने गुरु शास्त्र से सुनकर यो निश्चय कर रक्खा है कि कोई ब्रह्म है आप कूं निश्चय नहीं किया कि मैं ब्रह्म हूं इस कूं तो परोक्ष ज्ञान कहते हैं यो परोक्ष ज्ञान गुरु शास्त्र पूर्वक जिस कूं है सो ज्ञान बुद्धि पूर्वक उसके किये हुये समस्त पापों कूं अग्निवत् भस्म कर देता है जब यो निश्चय हुआ कि मैंहीं ब्रह्म हूं इस कूं अपरोक्ष ज्ञान कहते हैं यो अप-

ऐसा ज्ञान गुरु शास्त्र पूर्वक जिसकूं है सो ज्ञान मूला ज्ञान सहित समस्त संसार कूं दूर कर देता है अर्थात् उसका जन्म नहीं होता वो निरति शयानन्द कूं प्राप्त होता है इस प्रकार परमात्मा का स्वरूप चिन्तवन करने से तृप्ति तो नहीं होती परन्तु ग्रन्थ के विस्तार के भयसे अलम् परि-पूर्णास्मि परमेश्वर कूं वारम्वार नमस्कार है कैसे वे परमेश्वर हैं जिन्होंने गोपियों के वस्त्र हरे हैं ऐसे जो श्रीकृष्णचन्द्र महाराज उन में प्रथम दासोऽहम् यो मेरी बुद्धि थी सो महाराज ने अपने स्वभाव के अनुसार मेरा भी दाकार हर लिया अब सोऽहम् यो शेष बुद्धि हो गई वारम्वार म-हाराज कूं इस हेतु से नमस्कार करता हूं कि मुझ कूं ऐसा निश्चय होता है व्यतीत जन्मों में महाराज कूं कभी नम-स्कार नहीं किया क्योंकि जो यो जन्म हुआ और इस जन्म में जो नमस्कार किया तो आगे कूं जन्म नहीं होवेगा स्थूलादि शरीरों के अभाव होने से नमस्कार कौन करेगा इसीलिये पिछले अपराध के क्षमा के लिये और आगे कूं नमस्कार न करना इस कृतघ्नता महादोष दूर होने के लिये इसी जन्म में वारम्वार नमस्कार करता हूं श्रीकृष्ण चन्द्राय नमो नमः ३ जिसकी देवता में परम भक्ति और जैसी देवता में वैसी ही गुरु में है उस आत्मा कूं कहे हुये ये अर्थ प्रकाश होंगे अन्य कूं नहीं होंगे यो श्रुति का अर्थ है

श्री मत्परम हंस परिव्राज स्वामी मल्लका गिरि जी महाराज उनके चरण कमलों का भजनेवाला अनुचर शिष्य आनन्द गिरि नाम ने यो ग्रन्थ आनंदाऽमृत वर्षिणी मुन्शी वन्सीधर जी जिनके किन्चित गुण प्रथम अध्याय में लिखे हैं उन कूं सुख पूर्वक ब्रह्म तत्व जानने के लिये उनकी श्रद्धा भक्ति पूर्वक प्रार्थना से अति सुगम अति पवित्र अति गुप्त सब विद्या धर्मों में श्रेष्ठ जो इस में ब्रह्मतत्व सो सुख पूर्वक जाना जावे प्रत्यक्ष फल है जिस में सो आज द्वितीय ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष दोयज रविवार सम्वत् उन्नीस सौ पन्द्रह १९१५ में विनिर्मित करके समाप्त किया पढ़ने सुनने वालों कूं शान्ति हो शुभ हो हरिः ओम् तत्सत् हरिः ॐ तत्सत् हरिः ॐ तत्सत् श्री कृष्णचन्द्राय नमो नमः इति श्री आनन्दाऽमृत वर्षिणी दशमोऽध्याय स्समाप्तं शुभम्॥

श्री गणेशाय नमः॥ अपार संसार समुद्र मध्ये निमज्जतो मे शरणं किमस्ति। गुरो कृपालो कृपया वदैतत् विश्वेश पादाम्बुज दीर्घ नौका॥१॥ बद्धोहि कोयो विषयानुरागः कोवा विमुक्तो विषये विरक्तः। कोवास्ति घोरो नरकः स्वदेह स्तृष्णा क्षयः स्वर्ग पदं

(क्रमशः)

किमस्ति ॥२॥ संसारहृत्कस्तु निजात्मबोधः को मोक्ष-
हेतुः प्रथितः स एव। द्वारं किमेकं नरकस्य नारी का स्व-
र्गदा प्राणभृतामहिंसा ॥३॥ शेते सुखं कस्तु समाधि-
निष्ठो जागर्ति को वा सदसद्विवेकी। के शत्रवः सन्ति-
निजेन्द्रियाणि तान्येव मित्राणि जितानि तानि ॥४॥
को वा दरिद्रो हि विशालतृष्णः श्रीमांश्च को यस्य समस्त-
तोषः। जीवन्मृतः कस्तु निरुद्यमो यः का वामृता-
स्यात् सुखदा निराशा ॥५॥ पाशो हि को यो ममताभि-
मानः सम्मोहयत्येव सुरेव का स्त्री। को वा महान्धो मदना-
तुरो यो मृत्युश्च को वा अपयशः स्वकीयं ॥६॥ को वा गुरु-
र्यो हि हितोपदेष्टा शिष्यस्तु को यो गुरुभक्त एव। को दी-
र्घरोगो भव एव साधो किमौषधं तस्य विचार एव ॥७॥
किं भूषणाद्भूषणमस्ति शीलं तीर्थं परं किं स्वमनो वि-
शुद्धम्। किमत्र हेयं कनकं च कान्ता श्रव्यं सदा किं गुरुवेद-
वाक्यं ॥८॥ के हेतवो ब्रह्मगतेस्तु सन्ति सत्संगतिर्दान-
विचारतोषाः। के सन्ति सन्तोऽखिलवीतरागा अपास्तमो-
हाः शिवतत्त्वनिष्ठाः ॥९॥ को वा ज्वरः प्राणभृतां हि-
चिन्ता मूर्खोऽस्ति को यस्तु विवेकहीनः। कार्या प्रिया का
शिवविष्णुभक्तिः किं जीवनं दोषविवर्जितं यत् ॥१०॥
विद्या हि का ब्रह्मगतिप्रदा या बोधो हि को यस्तु विमु-
क्तेर्हेतुः। को लाभ आत्मावगमो हि यो वै जितं जगत्केन

मनोहितेन ॥ २१ ॥ शूरान्महाशूरतरोऽस्ति कोवा मनोज बाणै र्व्यथितो नयस्तु । प्राज्ञोऽस्ति धीरश्च समोऽस्ति कोवा प्राप्तो नमोहं ललना कटाक्षैः ॥ २२ ॥ विषाद्विषं किं विषयाः समस्ताः दुःखी सदा को विषयानुरागी । धन्योऽस्ति कोयस्तु परोपकारी कः पूजनीयो ननु तत्त्व निष्ठः ॥ २३ ॥ सर्वास्ववस्थास्वपिकं नकार्यं किंवा विधेयं विदुषा प्रयत्नात् । स्नेहंच पापं पठनंच धर्मः संसार मूलहि किमस्त्य विद्या ॥ २४ ॥ विज्ञान् महा विज्ञ तमोऽस्ति कोवा नार्या पिशाच्या नच वंचितोयः । कापृंखला प्राणभृतान्च नारी दिव्यं व्रतं किंच निरस्त दैन्यं ॥ २५ ज्ञातुं नशक्यं हि किमस्ति सैर्वे योषिन्मनो यच्चरितं तदीयं । कादुस्त्य जा सर्व जनै र्दुराशा विद्या विहीनः पशुरस्ति कोवा ॥ २६ ॥ वासोन संगः सह कै र्विधेयो मूर्खैश्च पापैश्च खलैश्च नीचैः । मुमुक्षुणा किं त्वरितं विधेयं सत्संगति र्निर्ममतेश भक्तिः ॥ २७ ॥ लघुत्व मूलंच किमर्थिं तैव गुरुत्व बीजं पदयाचनं किम् । जातोऽस्ति कोयस्तु पुनर्न जन्म कोवा मृतो यस्य पुनर्न मृत्युः ॥ २८ ॥ मूकस्तु कोवा बधिरश्च कोवा युक्तं नवक्तुं समये समर्थः । तथ्यं सुपथ्यं नशृणोति वाक्यं विश्वास पात्रंन किमस्ति नारी ॥ २९ ॥ तत्त्वं किमेकं शिवमद्वितीयं किमुत्तमं सच्चरितं वदन्ति । किं कर्म कृत्वा नहि शोचनीयः कामारि

कंसारि समर्च नारव्यं ॥२०॥ शत्रो र्महा शत्रु तमोऽस्ति कोवा कामः सकोपा नृत लोभ तृष्णः। नपूर्यते को। विषयैः सएव किं दुःख मूलं ममता भिधानम्॥२१॥ किं मराडनं साक्षरता मुखस्य सत्यंच किं भूत हितं तदेव। सत्या सुखं किं स्त्रिय मेव सम्यक् देयं परं किन्त्व। भयं सदैव॥२२॥ कस्यास्ति नाशे मन सोहि मोक्षः। क्क सर्वथा नास्ति भयं विमुक्तौ। शल्यं परंकिं निज मूर्ख तैव के केस्तु पास्या गुरव श्च वृद्धाः॥२३॥ उपस्थिते प्राण हरे कृतांते कि मात्तु कार्यं सुधिया प्रयत्नात्। वाक्काय चित्तैः सुखदं यमघ्नं मुरारि पादाम्बुज मेव चित्यं॥२४॥ के दस्यवः सन्ति कु वासना रख्याः कः शोभते यः सदसि प्रविद्यः। मातेव काया सुखदा सुविद्या किमेधते दानवशा त्सुविद्या॥२५॥ कुतोहि भीतिः सततं विधेया लोकाप वादाद्भव काननाच्च। कोवास्ति वंधुः पितरौच कोवा विपत्सहायो परिपाल कौयो। बुद्ध्वान बोद्धं परि शिष्यते किं शिवं प्रशांतं सुख बोध रूपं। ज्ञातेतु कस्मिन् विदितं जगत्स्या त्सर्वात्म के ब्रह्मणि पूर्ण रूपे॥२७॥ किं दुर्लभं सद्गुरु रस्ति लोके। सत्संगति र्ब्रह्म विचारणाच त्यागोहि सर्वस्य शिवात्म बोधः। किं दुर्जयं सर्वजनै र्मनोजः॥२८॥ पशोः पशुः कोन करोति धर्मं प्राधीत शास्त्रो पिनचात्म बोधः किं

तद्धियं भाति सुधोपमस्त्री केशावदो मित्र वदात्म जा-
द्याः ॥ २९ ॥ विद्युच्चलं किं धन यौवनायुर्दानं परं किंच
सुपात्र दत्तम् । कण्ठं गतैरप्य सुभिर्न कार्य्यं किं किं ।
विधेयं मलिनं शिवार्च्चा ॥ ३० ॥ किं कर्म यत्प्रीतिकरं
मुरारेः क्वास्था न कार्य्या सततं भवाब्धौ । अहर्निशं किं
परिचिंतनीयं संसार मिथ्यात्व शिवात्म तत्त्वम् ।३१।
कंठं गतावा श्रवणं गतावा प्रश्नोत्तराख्या मणिरत्न
माला । तनोतु मोदं विदुषां सुरम्या रमेश गौरीश क-
थेव सद्यः ॥ ३२ ॥

इति

नाम किताब	नाम किताब	नाम किताब	नाम किताब
तथा मोटे अक्षरों की	अनेकार्थ	पद्मावती खराड	दानलीला व नागलीला
मये तसवीर व क्षेपक	छन्दोर्णव पिंगल	शुक बहत्तरी	हीरावली रत्नावली
रामायण तुलसीकृत	कविकुल कल्पतरु	बकावली सुमन	गोकर्ण माहात्म्य
सातों काराड	रसराज	चहार दरवेश	श्रीगोपाल सहस्रनाम
१ बाल काराड	सतसई मूल तथा स॰	क़िस्सा हातिम ताई	कथा सत्यनारायण स॰
२ अयोध्या काराड	सभा बिलास	अद्भुत कथा	हनुमान बाहुक
३ आरराय काराड	तुलसी शब्दार्थ	क़िस्सा गुल सनोबर	जनक पचीसी
४ किष्किन्धा कांड	भजनावली	सहस्र रजनी चरित्र	हरिहर सगुण निर्गुण प॰
५ सुन्दरकाराड	प्रेम रत्न	राबिन्सन् का इतिहास	वनयात्रा
६ लंका काराड	युगुल बिलास	वैद्यक	कायस्थ वर्ण निर्णय
७ उत्तर काराड	चित्र चन्द्रिका	निघण्टु भाषा	बिहार बिन्द्राबन
रामायण शब्दार्थ की	बारहमासा बलदेव क॰	अमर बिनोद	भ्रमर बिहार बिंद्राबन
रामायण का इतिहास	मनोहर लहरी	वैद्यजीवन	कल्प भाष्य
रामायण मानसदीपिका	गंगा लहरी	औषधि संग्रह कल्पवल्ली	दरसी
रामायण कवितावली	यमुना लहरी	अमृतसागर बड़ा व छोटा	अक्षरावली
रामायण गीतावली	जगद् बिनोद	वैद्य मनोत्सव	स्वयम्बोध
रामायण गीतावली स॰	राग	ज्योतिष	ज्ञान चालीसी
विनयपत्रिका बा॰ मो॰	रागप्रकाश	जातक चन्द्रिका	दोहावली
विनयपत्रिका बा॰ शी॰	लावनी	जातकालङ्कार	बालबोध
नाटक	शृंगार बत्तीसी	दैवज्ञ भरण	विद्यार्थी की प्रथम पुस्तक
आनन्द रघुनन्दन	क़िस्सा वग़ैरह	ज्ञान स्वरोदय	किताब जंत्री
प्रबोध चन्द्रोदय	नानार्थनो संग्रहावली	रमल सार	गणित कामधेनु
काव्य	ब्रह्मसार	इन्द्रजाल	लीलावती
सूरसागर	शिवसिंह सरोज	मुतफ़र्क़ात	पटवारियों की पुस्तक ४ भा॰
कृष्णसागर	भक्तमाल	शनिश्चर की कथा	सर्रिश्ते तालीम की
विश्रामसागर	रामाभिषेक नाटक	ज्ञानमाला	पुस्तकें
प्रेमसागर	इन्द्रसभा	गोपीचन्द भरतरी	संस्कृत
ब्रजविलास बड़ा व छोटा	बिक्रम बिलास	कथा श्रीगंगा जी	ऋजुपाठ १ भा॰ २ व ३ भा॰
कृष्णप्रिया	बेताल पचीसी	अवध यात्रा	धात्वर्णव
बिजय मुक्तावली	सिंहासन बत्तीसी	भरतरी गीत	नागरी व कैथी

नाम किताब	नाम किताब	नाम किताब	नाम किताब
वर्णमाला कैथी १ भा-	हितोपचिका	रजिस्टर दाख़िल ख़ा-	ऐक्ट स्टाम्प दस्तावे
व-२ भाग	बालाभूषण	रिज तुलबा मदरसा	ज़ १८६९ ई०
तथा कैथी फ़ारसी नागरी	पद्यसंग्रह	रजिस्टर हाज़िरी पाठशाला	ऐक्ट ताल्लुक़दारान
हरूफ़ मुफ़र्दात	भाषाकाव्यसंग्रह	वेदान्त	मुक़द्दमा अवध १
अक्षरारम्भ	कवित्तरत्नाकर १ भा-	योगवाशिष्ठ	सन् १८७० ई०
वर्णप्रकाशिका १	२ भाग	आनन्दामृतवर्षिणी	ऐक्ट चौपायों का
भाग व २ भाग	मंगलकोष	क़ानून	मदाख़लत बेजा १
सूरजपुर की कहानी	अंकप्रकाश	पटवारियों के क़ायदे	सन् १८७७ ई०
धर्मसिंह का वृत्तान्त	गणितप्रकाश १ भा-	उर्दू कैथी महाजनी	ऐक्ट मजमूआ ज़ा-
शिक्षावली	तथा २ भा० व ३ भा० व ४	टिकट के लाइसन्स का	बता फ़ौजदारी १०
शिशुबोध	गणितक्रिया	ऐक्ट २ सन् १८७८ ई०	सन् १८७२ ई०
पत्र हितैषिणी	क्षेत्रप्रकाश	नागरी	ऐक्ट मालगुज़ारी १
पत्रदीपिका	क्षेत्रचन्द्रिका २ भाग	ऐक्ट लगान मग़रबी	मग़रबी व शिमाली
विद्याचक्र	सकील दायरा	व शिमाली १० सन्	१९ सन् १८७३ ई०
विद्याङ्कुर	लीलागणित १ भा० व २	१८५९ ई०	तरमीम मजमूआ १
पदार्थ विद्यासार	बीजगणित १ भा० व २	इण्डियन पिनल ५	ज़ाबिता फ़ौजदारी
पदार्थ ज्ञान विरद	रामायण तुलसीकृत	कोर्ट मजमूआ ज़ाबि-	११ सन् १८७४ ई०
भोज प्रबन्धसार	बालकाण्ड	ता फ़ौजदारी ऐक्ट	तक़ावी के क़ायदे
राजनीति	अयोध्याकाण्ड	२५ सन् १८६१ ई०	सवाल जवाब पु-
भाषा लघुव्याकरण	आरण्यकाण्ड	ऐक्ट स्टाम्प १ सन्	लिस
१ भाग तथा २	[illegible]	[illegible]	अवध रुहेलखंड
भाषातत्त्वदीपिका	[illegible]	[illegible] ई०	रेलवे का दस्तूरुल
भाषा चन्द्रोदय	[illegible]	[illegible]	अमल
भूगोल तत्त्व	[illegible]	[illegible] तन	
भूगोल दर्पण	[illegible]	[illegible] ई०	
इतिहासतिमिरनाशक	[illegible]	[illegible] अव-	इति
१ भा० २ व० ३ भाग	[illegible]	[illegible] सन्	
अवधदेशीय भूगोल	पशुचिकित्सा	१८६८ ई मुख़्तारी	
इंगलिस्तान का इतिहास	पट्टा बख़्त कैथी	२६ सन् १८६६ ई०	
भारतवर्षीय इतिहास	तथा क़बूलियत	वग़ैरह	